* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

संसार-कूपमें पड़ा प्राणी
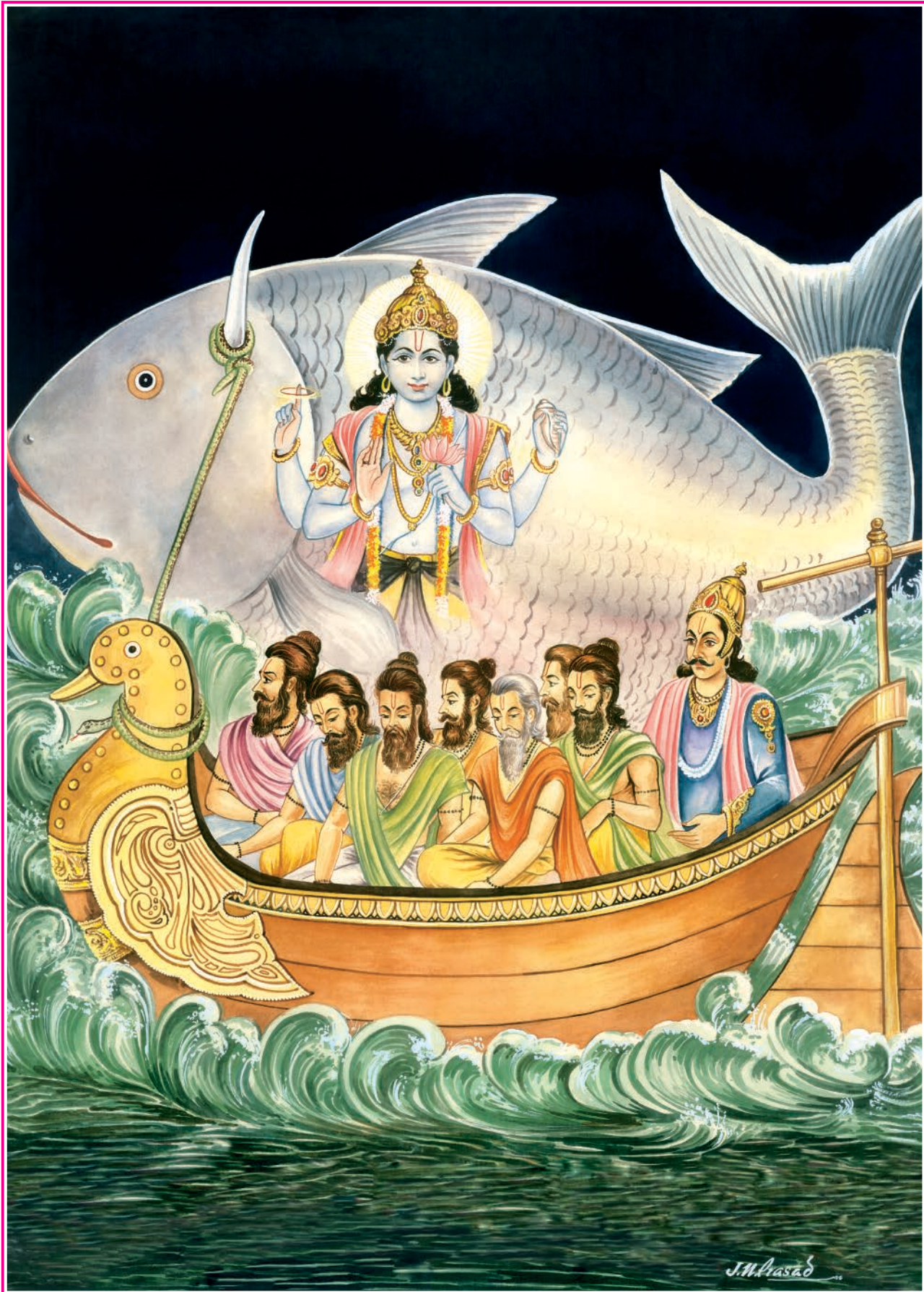
मत्स्यावतार

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः। नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः। सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥

वर्ष ९०

गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, नवम्बर २०१६ ई०

संख्या ११

पूर्ण संख्या १०८०

मत्स्यावतार

नैमित्तिक लय जब भयो, ब्रह्माजी निद्रित भये।
सत्यब्रत राजर्षि हित, श्रीहरि मछली बनि गये॥

× × × ×

हरि हँसि बोले—सात दिन, महँ होवै त्रैलोक्य लय।
एक होंहिं सातहुँ उदधि, जगत होहि सब सलिलमय॥

× × × ×

सात दिवस जब भये भई पृथिबी जलमय सब।
आई नौका एक ऋषिनि सँग चढ़े भूप तब॥
बाँधी शफरी सींग प्रलय जलमहँ बिचरैं हरि।
पूछे पावन प्रश्न नृपतिने अति बिनती करि॥
जो जगमय जगतें पृथक, देहिँ ज्ञान गुरु रूप धरि।
गुरुके गुरु हरि हो तुमहिं, नाम सुमिरि बहु गये तरि॥

[श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, नवम्बर २०१६ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹२२०

पंचवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — **वार्षिक** US$ 50 (₹3000); **पंचवर्षीय** US$ 250 (₹15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | **09235400242/244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—दूसरोंको सुख पहुँचाना, उनके दु:खको अपना दु:ख बनाकर अपना सुख उन्हें दे देना—इस प्रकारका क्षणभरका मनोरथ भी महान् पुण्यरूप है। दूसरेके दु:खको सर्वथा अपना बना लेना तो अत्यन्त ही महत्त्वकी बात है, उसके दु:खका जरा-सा हिस्सा बँटाना भी बहुत बड़ा सौभाग्य है। इसीमें मानवताका विकास है।

सत्पुरुषोंको दु:ख होता है, पर अपने दु:खसे नहीं, अपने दु:खकी उन्हें परवा ही नहीं होती। वे तो दूसरोंके दु:खसे ही दुखी होते हैं। इसी प्रकार निर्विकार सन्तोंकी सहज नित्य सुखरूपता भी दूसरेके सुखमें सुखका अनुभव किया करती है।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

'कवियोंने संत-हृदयकी तुलना नवनीतसे की, पर वह ठीक बैठी नहीं; क्योंकि मक्खन तो स्वयं ताप (गरमी) पाकर पिघलता है, लेकिन पवित्र-हृदय संत दूसरेके दु:खसे द्रवित हो जाते हैं।'

इसीलिये संत पुरुष स्वयं विपत्तिका वरण करके दूसरेको सुख पहुँचाया करते हैं। उनका जीवन होता ही है इसीलिये, नहीं तो, उन आप्तकाम महात्माओंका जगत्के कर्मप्रपंचसे क्या सम्बन्ध?

याद रखो—संसारमें उनका जीवन सर्वथा घृणित, पापमय और निकृष्ट है, जो दूसरोंको दु:ख देनेके लिये ही जीवन धारण करते हैं और उसीमें सुख तथा सफलताकी अनुभूति करते हैं।

× × × ×

याद रखो—भूखे गरीबको अन्न, नंगेको कपड़ा, रोगीको दवा तथा पथ्य और निराश्रयको आश्रय जरूर दो, परंतु मनमें ऐसा अभिमान कभी मत करो कि वह आश्रयहीन दरिद्र है और मैं उसपर उपकार करनेवाला समर्थ कृपालु हूँ। असलमें सबको भगवान् ही देते हैं। तुम तो उसमें निमित्तमात्र हो। शुभकर्ममें भगवान्ने तुमको निमित्त बनाया है, यह तुमपर उनकी विशेष कृपा है।

सभी रूपोंमें भगवान् हैं, यह समझकर भगवत्पूजाकी भावनासे गरीब, अपाहिज और रोगीकी खूब सेवा करो और भगवान्ने इन रूपोंमें आकर तुम्हारी सेवाको स्वीकार किया, इसे अपना परम सौभाग्य समझो।

असलमें तुम्हारे पास तुम्हारा अपना है ही क्या? सभी वस्तुएँ भगवान्की ही हैं। तुम उन्हें अपनी मानकर और अपनेको उनका दाता समझकर अभिमान करने लगो तो यह तुम्हारी बेईमानी होगी। प्रभुकी वस्तु प्रभुके अर्पण हो और यह कार्य सुचारुरूपसे—सुव्यवस्थित रीतिसे हो, यही तुम्हारा कर्तव्य है। कर्तव्यसे चूकते हो तो तुम मालिकके अपराधी बनते हो।

याद रखो—भगवान्की वस्तुओंको अपनी मानना बेईमानी, उन्हें अपनी बताकर किसीपर अहसान करना बेईमानी, अपनेको उनका दानी घोषितकर रोब गाँठना बेईमानी और न देकर स्वयं मालिक बन बैठना तो सबसे बड़ी बेईमानी है।

यह सदा स्मरण रखो कि सब कुछ भगवान्का है और सब भगवान्के रूप हैं। भगवान्की वस्तु, भगवान्को जब जिस रूपमें जैसे जरूरत हो, उस रूपमें वैसे ही देनेके लिये ही वह वस्तु तुम्हें सौंपी गयी है और इस सेवाका तुम्हें सदा बदला मिलता रहता है—यहाँ 'योग-क्षेम' का निर्वाह होता है और मति-गति शुभ होती है। आगे इससे भी बहुत बड़ा पुरस्कार मिलनेवाला है, इस सेवाके बदलेमें मालिक स्वयं तुम्हें अपना आत्मदान करनेवाले हैं। इसलिये ईमानदारीसे सेवा करनेमें कभी मत चूको।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

संसार-कूपमें पड़ा प्राणी
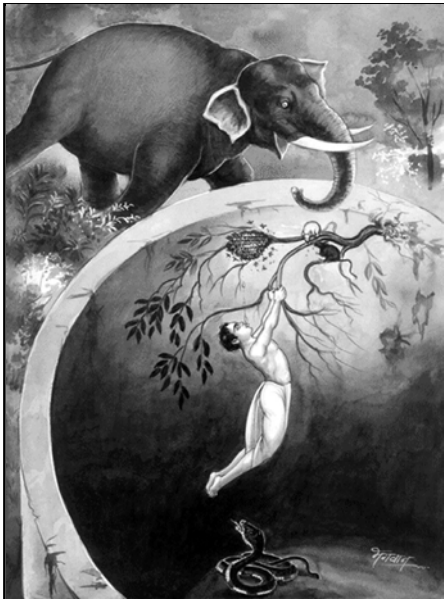
भव-कूप—यह एक पौराणिक रूपक है, और है सर्वथा परिपूर्ण। इस संसारके कूपमें पड़ा प्राणी कूप-मंडूकसे भी अधिक अज्ञानके अन्धकारसे ग्रस्त हो रहा है। अहंता और ममताके घेरेमें घिरा प्राणी—समस्त चराचरमें परिव्याप्त एक ही आत्मतत्त्व है, इस परम सत्यकी बात स्वप्नमें भी नहीं सोच पाता।

कितना भयानक है यह संसार-कूप—यह सूखा कुआँ है। इस अन्धकूपमें जलका नाम नहीं है। इस दु:खमय संसारमें जल—रस कहाँ है। जल तो रस है, जीवन है; किंतु संसारमें तो न सुख है, न जीवन है। यहाँका सुख और जीवन—एक मिथ्या भ्रम है। सुखसे सर्वथा रहित है, संसार और मृत्युसे ग्रस्त है—अनित्य है।

मनुष्य इस रसहीन सूखे कुँएमें गिर रहा है। कालरूपी हाथीके भयसे भागकर वह कुँएके मुखपर उगी लताओंको पकड़कर लटक गया है कुँएमें। लेकिन कबतक लटका रहेगा वह? उसके दुर्बल बाहु कबतक देहका भार सम्हाले रहेंगे। कुँएके ऊपर मदान्ध गज उसकी प्रतीक्षा कर रहा है—बाहर निकला और गजने चीरकर कुचल दिया पैरोंसे।

कुएँमें ही गिर जाता—कूद जाता; किंतु वहाँ तो महाविषधर फण उठाये फूत्कार कर रहा है। क्रुद्ध सर्प प्रस्तुत ही है कि मनुष्य गिरे और उसके शरीरमें पैने दन्त तीक्ष्ण विष उँडेल दें। अभागा मनुष्य—वह देरतक लटका भी नहीं रह सकता। जिस लताको पकड़कर वह लटक रहा है, दो चूहे—काले और श्वेत रंगके दो चूहे उस लताको कुतरनेमें लगे हैं। वे उस लताको ही काट रहे हैं। लेकिन मूर्ख मानवको मुख फाड़े सिरपर और नीचे खड़ी मृत्यु दीखती कहाँ है। वह तो मग्न है। लतामें लगे शहदके छत्तेसे जो मधुबिन्दु यदा-कदा टपक पड़ते हैं, उन सीकरोंको चाट लेनेमें ही वह अपनेको कृतार्थ मान रहा है।

यह न रूपक है, न कहानी है। यह तो जीवन है—संसारके रसहीन अन्धकूपमें पड़े सभी प्राणी यही जीवन बिता रहे हैं। मृत्युसे चारों ओरसे ग्रस्त यह जीवन—कालरूपी कराल हाथी कुचल देनेकी प्रतीक्षामें है इसे। मौतरूपी सर्प अपना फण फैलाये प्रस्तुत है। कहीं भी मनुष्यका मृत्युसे छुटकारा नहीं। जीवनके दिन—आयुकी लता जो उसका सहारा है, कटती जा रही है। दिन और रात्रिरूपी सफेद तथा काले चूहे उसे कुतर रहे हैं। क्षण-क्षण आयु क्षीण हो रही है। इतनेपर भी मनुष्य मोहान्ध हो रहा है। उसे मृत्यु दीखती नहीं। विषय-सुखरूपी मधुकण जो यदा-कदा उसे प्राप्त हो जाते हैं, उन्हींमें रम रहा है वह—उन्हींको पानेकी ही चिन्तामें व्यग्र है वह!

संसारकूपे पतितोऽत्यगाधे मोहान्धपूर्णे विषयाभितप्ते। करावलम्बं मम देहि विष्णो गोविन्द दामोदर माधवेति॥

जो मोहरूपी अन्धकारसे व्याप्त और विषयोंकी ज्वालासे सन्तप्त है, ऐसे अथाह संसाररूपी कूपमें मैं पड़ा हुआ हूँ। 'हे मेरे मधुसूदन! हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' मुझे अपने हाथका सहारा दीजिये।

भगवान्‌के लिये काम कैसे किया जाय ?

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

प्रश्न—प्रसन्नतापूर्वक भगवान्‌का नाम समझकर भगवान्‌को याद रखते हुए किसीसे भी रागद्वेष न करके अपने कर्तव्यका पालन किस प्रकार किया जा सकता है?

उत्तर—सब कुछ परमेश्वरका ही है, परमेश्वर ही खेल कर रहे हैं, परमेश्वर बाजीगर हैं, मैं उनका झमूरा हूँ, यों समझकर सब कुछ ईश्वरकी लीला समझते हुए, परमेश्वरके आज्ञानुसार आसक्ति और फलकी इच्छा छोड़कर, परमेश्वरकी सेवाके लिये उन्हींकी प्रेरणा तथा शक्तिसे प्रेरित होकर कार्य करता रहे। यह समझकर बार-बार गद्‌गद होता रहे कि अहा! मुझपर परमेश्वरकी कितनी अपार दया है कि मुझ-जैसे तुच्छको साथ लेकर भगवान् अपनी लीला कर रहे हैं। भगवान्‌के प्रेम, दया, प्रभाव, स्वरूप और तत्त्वपर बारम्बार विचार करता हुआ मुग्ध होता रहे।

(प्रेम) भगवान्‌के समान कोई प्रेमी नहीं है, वे प्रेमका इतना महत्त्व जानते हैं कि असंख्य ब्रह्माण्डके महेश्वर होते हुए भी अपनेको प्रेमीके हाथ बेच डालते हैं।

(दया) मैं कैसा नीच हूँ, कैसा निकृष्ट और महापामर हूँ, परंतु उस परम प्रभुकी मुझपर कितनी अपार दया है कि वे मुझको साथ लेकर लीला कर रहे हैं। प्रभुने सब पाप-तापोंसे बचाकर मुझे ऐसा बना लिया है।

(प्रभाव) प्रभुके प्रभावका कौन वर्णन कर सकता है, वे चाहें तो करोड़ों ब्रह्माण्डोंको एक पलमें उत्पन्न कर सकते हैं।

(स्वरूप) सारे संसारका सौन्दर्य मेरे प्रभुके एक रोमके समान भी नहीं है। वे आनन्दमूर्ति हैं। उनका दर्शन परम सुखमय है। वे चेतनामय महाप्रभु हैं। जैसे तारोंमें बिजली अनेक प्रकारसे कार्य कर रही है, वैसे ही प्रभुकी शक्ति सब कुछ कर रही है। वे विज्ञानानन्दघन परमात्मा सब जगह परिपूर्ण हैं। वे ही विज्ञानानन्दघन प्रभु श्रीराम-कृष्णके रूपमें अवतार लेते हैं।

(रहस्य) उनका रहस्य कौन जान सकता है? वे सबमें समाये हैं, परंतु कोई उन्हें नहीं पकड़ पाता। भेदका नाम ही रहस्य है। भगवान् श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हुए, उस रूपमें बहुत लोगोंने उन्हें भगवान् नहीं समझा। कोई ग्वालबालक समझता था तो कोई वसुदेव-पुत्र। जो महात्मा पुरुष उनको भगवान्‌के रूपमें जान गये, उन्हींपर उनका रहस्य प्रकट हुआ। प्रभुके रहस्यको जान लेनेपर चिन्ता, दुःख और शोकका तो कहीं नाम-निशान ही नहीं रहता। प्रभु सब जगह विराजमान हैं, इस रहस्यको जानना चाहिये। अर्जुन भगवान्‌के रहस्यको कुछ जानते थे और उनसे रथ हँकवाते थे, परंतु वे भी भगवान्‌के विश्वरूपको देखकर भय और हर्षके मिश्रित भावोंमें डूब गये। तब भगवान्‌ने कहा 'भय मत कर!' जबतक अर्जुनको भय हुआ, तबतक उन्होंने भगवान्‌के पूरे रहस्यको नहीं समझा। पहचानना तो वस्तुतः यथार्थमें प्रह्लादका था। जो भगवान् नृसिंहदेवको विकराल रूपमें देखकर भी बेधड़क उनके पास चले गये। प्रह्लादको किंचित् भी भय नहीं हुआ। इसी प्रकार परमात्माके रहस्यको जाननेवाला सर्वदा सर्वत्र निर्भय हो जाता है।

प्रश्न—जीवमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह प्रभुके रहस्यको जान सके। जब प्रभु जनाते हैं, तभी जान सकता है। प्रह्लादको प्रभुने जनाया, तभी तो वे भगवान्‌को जान सके। वे हमलोगोंको अपना रहस्य किस उपायसे जना सकते हैं?

उत्तर—इसके लिये प्रभुसे प्रार्थना करनी चाहिये। वे कृपा करके जना सकते हैं, परंतु यह नियम है कि पात्र होनेसे प्रभु अपनेको जना देते हैं। भगवान्‌की दयापर दृढ़ विश्वास करना चाहिये। भक्तशिरोमणि भरतजीने भी कहा था—

जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥

ऐसा दृढ़ भरोसा रखनेवालेकी प्रभु सम्हाल करते हैं। अतएव प्रभुसे सच्चे दिलसे ऐसी कातर-प्रार्थना करनी चाहिये कि 'हे नाथ! मैं अति नीच हूँ, किसी प्रकार भी पात्र नहीं हूँ। गोपियोंकी भाँति जिसमें प्रेमका बल है, उसके हाथ तो आप स्वयं ही बिक जाते हैं। हे प्रभो! मेरे पास प्रेमका बल होता तो फिर रोने और प्रार्थना करनेकी क्या जरूरत थी। मैं जब अपने अवगुणोंकी तथा बलकी ओर देखता हूँ तो मनमें कायरता और निराशा छा जाती है, परंतु हे नाथ! आपकी दया तो अपार है, आप दयासिन्धु हैं, पतितपावन हैं, मुझे वह बल दीजिये, जिससे मैं आपके रहस्यको जान जाऊँ।'

कामको प्रभुका काम समझना चाहिये। हम लीलामयके साथ काम कर रहे हैं। इससे प्रभुकी इच्छाके अनुसार ही चलना चाहिये। यदि आसक्ति या स्वभावदोषके कारण उनकी आज्ञाका कहीं उल्लंघन हो जाय तो पुनः वैसा न होनेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये।

अपनी समझसे कोई अनुचित कार्य नहीं करना चाहिये। हमलोग किसीकी भलाईके लिये कोई कार्य कर रहे हैं और कदाचित् उससे उसकी कोई हानि हो जाय तो इसके लिये शोक करनेकी जरूरत नहीं है। कोई भी काम दैव-इच्छासे हो जाय, उसमें चिन्ता या पश्चात्ताप नहीं करना चाहिये। हमको अपने कृत्यकी भूलके लिये ही पश्चात्ताप करना उचित है।

हमको सूचना मिली कि यहाँ बहुत जल्दी बाढ़ आनेवाली है, हट जाना चाहिये। इस बातको जानकर भी हम नहीं हटे और हमारा सब कुछ बह गया तो हमें पश्चात्ताप करना चाहिये; क्योंकि भगवान्‌ने हमको सचेत कर दिया था और हमने उसको माननेमें अवहेलना की। परंतु यदि अचानक बाढ़ आकर सब डूब जाय तो चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं; क्योंकि वहाँ हमारी भूल नहीं हुई है।

एक जगह बाढ़ आयी, बीज बह गये। हमलोगोंने बोनेके लिये किसानोंको बीज दिये, फिर बाढ़ आयी, और वे बीज भी बह गये। इसपर हमलोगोंको न तो शोक करना चाहिये और न यह विचार करना चाहिये कि बीज तो बह ही रहा है, व्यर्थ देकर क्यों नष्ट करें। हमलोगोंको तो स्वामीकी यही आज्ञा है कि बीज जहाँतक बने, उन्हें देते रहो। अतः हमको तो प्रभुके आज्ञानुसार ही करना चाहिये। उसमें कोई कसर नहीं रखनी चाहिये। प्रभु अपनी इच्छानुसार करें। सेवकको तो प्रभुका काम करके हर्षित होना चाहिये और मुस्तैदीसे अपने कर्तव्यपथपर डटे रहना चाहिये।

रोगी कुपथ्य कर ही लिया करते हैं। इसमें अपना क्या वश है। कुपथ्य करनेपर सद्वैद्य रोगीको धमका तो देता है, परंतु नाराज नहीं होता। वह समझता है कि मेरी पाँच बातोंमेंसे तीन तो इसने मान ली। दोके लिये फिर चेष्टा करेंगे। वैद्य बारम्बार चेष्टा करता है, जिससे वह कुपथ्य न करे, परंतु चेष्टा करनेपर भी उसका हित न हो तो वैद्यको उकतानेकी जरूरत नहीं है। न क्रोध ही करनेकी आवश्यकता है। फलको भगवान्‌की इच्छापर छोड़ देना चाहिये और बिना उकताये प्रभुकी लीलामें उनके इच्छानुसार लगे रहना चाहिये।

परमार्थतः अजर-अमरके लिये रोना व्यर्थ

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

श्रीभगवान् ही सार और सत्य वस्तु हैं। उन्हींसे मुख्य सम्बन्ध मानना उत्तम है। संसारके अन्यान्य सम्बन्धियोंका कुछ भी ठिकाना नहीं है। कर्मवश जीवात्मा अनादिकालसे अनन्त योनियोंमें भटकता रहा है। उनमेंसे उसका अनेक देशों, कालों, व्यक्तियों एवं वस्तुओंसे सम्बन्ध बनता और बिगड़ता रहता है। भगवान्की मायाका यह वैचित्र्य है कि प्राणीको नये जन्मके ही कुछ व्यक्तियों एवं वस्तुओंका सम्बन्ध स्मृत रहता है; अन्यान्य जन्मोंकी सब बातें प्रायः भूल ही जाती हैं। अन्यथा जब अविवेकी प्राणी एक ही जन्मके सम्बन्धियोंको स्मरण करके उनके शोक-मोहमें डूबकर रोता रहता है, तब फिर सर्वका बोध रहनेपर तो किस-किसके दुःखपर कितना रोया जाय।

इस सम्बन्धमें श्रीवसिष्ठजीने श्रीरामजीसे एक दृष्टान्त देकर कहा—रघुनन्दन! महेन्द्र नामक पर्वतपर दीर्घतपा नामक एक महर्षि अपनी पत्नीके साथ निवास करते थे। वे तपस्याके मूर्तिमान् स्वरूप थे। उनके पुण्य और पावन नामके दो पुत्र थे। समय बीतनेपर उनका ज्येष्ठ पुत्र पुण्य सम्यक् ज्ञानसे सम्पन्न हो गया, किंतु छोटा पुत्र पावन यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेमें असमर्थ रहा। महर्षि दीर्घतपाने यथासमय अपना शरीर त्याग दिया और माताने भी यौगिक क्रियाद्वारा महर्षिका अनुसरण किया। माता-पिताके दिवंगत हो जानेपर ज्येष्ठ पुत्र धैर्यपूर्वक विवेकसे स्थिरचित्त हो अपना कर्तव्य करता रहा, किंतु रागमें आसक्त पावनका चित्त शोकसे व्याकुल हो गया। पिताके मरनेपर शोकाकुल पावनको उसके भाई पुण्यने बतलाया है कि भैया, यह सब मायाका विलास केवल स्वप्न ही है। हम, तुम, संसार—ये सब कल्पनाएँ दुर्दृष्टि ही हैं, परमार्थतः केवल सर्वसाक्षी सर्वाधिष्ठान ब्रह्म ही तत्त्व है। विचार करनेपर माता, पिता, बन्धु, सब कल्पना व्यर्थ है। यदि ये वस्तुएँ हों, तो फिर जन्मान्तरके सभी बन्धुओंके लिये रोना चाहिये। फिर तो पिछले किन्हीं जन्मोंमें तुम सुपुष्पित वनस्थलीमें वृक्ष थे, कभी सिंह, कभी मत्स्य, कभी वानर, कभी वनवायस, कभी गर्दभ तो कभी पक्षी हुए थे, तबके बन्धुओंका भी स्मरण करो। कभी विन्ध्यपर्वतपर पिप्पल हुए थे। कभी महावटके घुण हुए थे, तो कभी मन्दराचलपर कुक्कुट हुए थे। फिर बर्फीले अश्म हुए। तालकन्दके भीतर तथा उदुम्बरके भीतरके कीट भी तुम हो चुके हो। इसी तरह कहाँतक गिनायें, कितने ही गिनायें तुम्हारे जन्म हुए हैं।
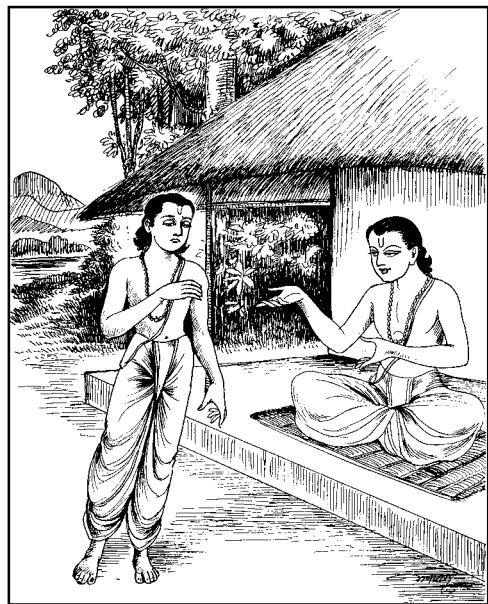
मेरा भी यही हाल है, मैं भी त्रिगर्त देशमें शुक हुआ। फिर मेढक, फिर वनका लावक पक्षी, विन्ध्यमें पुलिन्द, चातक, व्याघ्र और फिर गृध्र बना और फिर सिंह। वही मैं तुम्हारा अग्रज हूँ। विविध जन्म, विविध संसार, विविध चेष्टाएँ—सब-की-सब केवल भ्रान्ति हैं। कहना केवल इतना है कि अनन्त जन्मोंके अनन्त सुख-दुःख तथा सुख-दुःखकी सामग्रियों—बन्धु-बान्धवोंका कौन स्मरण करे, और कौन कितना किस-किसके लिये रोना रोये, जब परमार्थतः आत्मा सदा अजर-अमर एकरस है, परमानन्द कूटस्थस्वरूप है। अतः उसीमें प्रतिष्ठित होकर तद्भिन्नका संकल्प-चिन्तन छोड़ना ही श्रेयस्कर है।

हे नाथ! हम तुम्हारे हैं

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

यदि आप किसीको अपने मकानकी रजिस्ट्री कर दें और फिर उसपर अपना हक जमाने जायँगे तो आप निकाल दिये जायँगे। इसलिये उससे ममता आदि अपने-आप निकल जायगी। यह तो जबतक भगवान्‌में ममता नहीं होती है, तभीतक यह जगत्‌की ममता हमारे पीछे पड़ी रहती है। जब भगवान् हमारे हो गये और हम भगवान्‌के हो गये तो हमारी ममताकी सारी चीजें भगवान् छीन लेंगे और हमारी सारी ममता सब जगहसे निकलकर उन्हींमें जाकर केन्द्रित हो जायगी। यह जीवोंका सर्वोच्च लक्ष्य है। चाहे कोई इसे माने या न माने, परंतु जीव भगवान्‌का हो जाय तो उसकी सारी कामना, वासना, आसक्ति, ममता सब जाकर भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित हो जाय। भगवान्‌का हो जाय। तुलसीदासजी कहते हैं—

या जगमे जहँ लगि या तनुकी प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाँई॥

(विनय-पत्रिका १०३)

यह प्रार्थना बड़ी सुन्दर है। उन्होंने कहा—इस जगत्‌में इस शरीरको लेकर जहाँतक प्रीति, प्रतीति और सगाई-प्रेम, विश्वास और आत्मीयता है, यह सारी-की-सारी प्रीति भगवान् राघवेन्द्रमें लग जाय। सारा विश्वास भगवान्‌में जाकर समर्पित हो जाय और सारा अपनापन-आत्मीयता भगवान्‌से हो जाय।

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

(दोहावली २७७)

दूसरे किसीका भरोसा नहीं, दूसरेका बल नहीं, दूसरेका विश्वास नहीं, दूसरा कोई है ही नहीं। एक भगवान् ही हमारे हैं। यह भगवान् कैसे हैं ? जैसा आपका मन है, वैसे हैं। भगवान्‌से सम्बन्ध होनेमें जितनी सीधी बात है। वैसी जगत्‌में कहीं है ही नहीं। जिस रूपमें चाहे उस रूपमें हम उनको भज लें। जो सम्बन्ध चाहें, वह सम्बन्ध बनायें। जब चाहें तब भज लें। जैसे चाहें वैसे भज लें। भगवान् सब तरहसे अपने हैं और अपनानेको तैयार हैं। वे दोषोंपर ध्यान देते नहीं हैं। वे केवल गुणोंको देखते हैं। वे जरासे गुणपर रीझ जाते हैं और बड़े-से-बड़े दोषोंको भूल जाते हैं। यह भगवान्‌का स्वभाव है।

इसलिये भगवान्‌का स्वभाव देखकर हम लोगोंको स्वाभाविक ही उनका हो जाना चाहिये। यह जीवन जा रहा है। हम लोग यहाँपर इकट्ठे हुए हैं गंगाके तटपर। यह इसलिये नहीं कि दो-तीन महीने सैर करना है। मसूरी और नैनीतालके बदले ऋषिकेशमें रहना बड़ा अच्छा है। गंगा-स्नान भी हो जायगा, कुछ सत्संग भी सुन लेंगे। कुछ महात्माओंके दर्शन भी हो जायेंगे। यह अच्छा है, बहुत अच्छा है तथापि जब जीवनकी ओर देखना है तो इतनेसे काम नहीं चलेगा। हमें तो जीवनको लगा देना है भगवान्‌की ओर, तभी हमारे जीवनकी वास्तविक सार्थकता है। यहाँ आकर हमें कुछ छोड़ना चाहिये और वह छोड़नेकी एक ही चीज है अगर मनसे कर सकें कि जगत्‌की प्रीतिको छोड़ दें और भगवान्‌से प्रीति कर लें। विषयोंकी प्रीतिका परित्याग कर दें। यह होगा कैसे ? यह ऐसे होगा कि आप भगवान्‌के हो जायँ फिर भगवान् अपनी चीजको अपने-आप ठीक करेंगे।

तुलसीदासजी महाराजने अपने-आपको भगवान्‌को सौंप दिया। वे एक दिन बैठे थे तो मनमें जरा-सा सांसारिक भाव आया तो बोले—महाराज! देखो, अब आपकी इज्जत आपके हाथ है।

यह हृदय भवन प्रभु तोरा। यहाँ आय बसे बहु चोरा॥

उन्होंने कहा—भगवन्! यह शरीर आपका महल है। यहाँ चोर आ बसे हैं। आप लुट जायँगे। मुझे पता नहीं। लुटें कैसे ? जिस हृदयमें भगवान् बैठे हैं, जो हृदय भगवान्‌का हो गया, वह लुटेगा कैसे ?

रुक्मिणीकी रक्षा करनेके लिये ब्राह्मण रातके समय

आया और आकर कहा भगवान्से और पत्रिका दी। रुक्मिणीने उसमें लिखा था—नाथ! सिंहके भक्ष्यको शृगाल ले जाना चाह रहा है। आपकी वस्तुको शिशुपाल ले जाना चाहता है। आप रक्षा नहीं करेंगे? और रही मेरी बात तो आप यदि सौ जन्मोंतक नहीं मिलेंगे तो दूसरेकी ओर देखना नहीं है। मुझे तो आपकी ओर ही देखना है। वह पत्रिका मिली त्यों ही भगवान्ने कोई सेना इकट्ठा नहीं की। भगवान्ने दाऊजीको खबर नहीं की। वहाँ कितनी बड़ी सेना लिये चेदिराज, जरासन्ध आदि उपस्थित थे। कितनी अक्षौहिणी सेना थी वहाँपर! परंतु श्रीकृष्ण रुक्मिणीकी पुकार सुनकर उसकी रक्षाके लिये बस, दारुकको बुलाया और कहा रथ तैयार करो। रथसे तुरंत चल दिये कि सवेरे पहुँचना है और रुक्मिणीको बचाना है। बादमें जब दाऊजीको पता चला कि श्रीकृष्ण-श्यामसुन्दर अकेले गये हैं तब वे सारी सेना लेकर बादमें पहुँचे। भगवान् वहाँपर अकेले चले गये। क्यों? इसलिये कि भक्तकी पुकार थी।

जो उनका हो गया, जिसने कहा—मैं आपका हूँ उसकी रक्षाका सारा भार वे वहन करते हैं। कोई भी पाप-ताप, कोई भी दूसरा उसकी ओर देख नहीं सकता है। जो उनका हो गया, उसकी ओर संसारके दोष, संसारके दु:ख, संसारके पाप देख नहीं सकते। इसलिये हम भगवान्के हो जायँ और यदि कहीं होनेमें देर लगे तब अपने-आपको जैसे चुम्बकके सामने लोहा चला जाय तो चुम्बक खींच लेता है, उसी प्रकार अपनेको लोहा बना दें और अपनेको चुम्बकके सामने ले जायँ और कहें। हे नाथ! मैं आ गया। आप अपने-आप खींच लो। आप अपनी दयासे, अपनी करुणासे, अपनी प्रीतिसे, अपने विरदको देखकर हमारी ओर झाँको और हमें ले लो। हम प्रस्तुत हैं। आपके चरणोंमें समर्पित होनेके लिये हम आये हैं। जो कुछ होता है, सब उनकी कृपासे ही होता है। हमारे पास कौन-सी कीमत है, जिसको देकर हम भगवान्को खरीद लेंगे। हमारे पास कौन-सा साधन है। इन्द्रियाँ हमारे वशमें नहीं हैं। मन हमारे वशमें नहीं है। हमारा जीवन नाना प्रकारके विघ्नोंसे परिपूर्ण है। थोड़ा-सा जीवन है। किस बलपर, किस पुरुषार्थपर और किस साधनाकी कीमतको लेकर हम भगवान्से कहेंगे कि इसके बलपर हम आपको खरीद लेंगे। हमारे पास जो कुछ है, वह केवल दैन्य है। गरीबी है, दीनता है, नालायकपना है। इस नालायकपनेपर वे रीझ जायँ तो वे रीझते हैं। यदि हम कहें—हम नालायक हैं, हम पतित हैं, हम अधम हैं हमारे पास न पुरुषार्थ है। यामुनाचार्यजीने कहा—

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्यं त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥

(श्रीआलवन्दारस्तोत्र २५)

अर्थात् न मैं धर्मनिष्ठ हूँ, न मैं भक्त हूँ, न ही मैं आत्मज्ञानी हूँ। मैं तो अधम हूँ। अकिंचन हूँ, अनन्यगति हूँ और शरणागतरक्षक आपके चरणकमलोंकी शरण आया हूँ। आप बचाइये।

अभूतपूर्वं मम भावि किं वा सर्वं सहे मे सहजं हि दुःखम्।
किन्तु त्वदग्रे शरणागतानां पराभवो नाथ न तेऽनुरूपः॥

(श्रीआलवन्दारस्तोत्र २८)

हे नाथ! मेरे लिये यह कौन नयी बात है। मैंने तो कितने दु:ख आजतक सहे हैं। और भी सह लूँगा, परंतु मैं आपके शरणमें आ गया फिर मैं यदि इन दोषोंके द्वारा हरा दिया गया—आपके सामने शरणागतका पराभव होना आपके योग्य नहीं है—यह आपको शोभा नहीं देता।

इसलिये अपने सारे दैन्यको लेकर, अपनी सारी दीनताको लेकर, अपनी सारी अधमाईको लेकर, अपने सारे पामरपनको लेकर, पापसे भरे जीवनको लेकर, मलसे भरे शरीरको लेकर हम भगवान्से कहें—हे नाथ! हम तुम्हारे हैं। दूसरा हमारा कोई नहीं है। दूसरेकी हमें कोई आशा नहीं है। तुम्हारी ही केवल आशा है। तब भगवान् कहेंगे—तुम्हारा मल हम धो देंगे। तुम मेरी गोदमें आ जाओ। तुम्हें पाप-तापसे मुक्त कर देंगे। तुम मेरे हो।

कलियुगका परम साधन

(श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)

नवजलधरवर्णं चम्पकोद्भासिकर्णं
विकसितनलिनास्यं विस्फुरन्मन्दहास्यम्।
कनकरुचिदुकूलं चारुबर्हावचूलं
कमपि निखिलसारं नौमि गोपीकुमारम्॥

सभी शास्त्र कहते हैं कि भगवान्पर विश्वास करो। सभी संत-महात्माओंका मत है कि भगवान्की शरण जाओ, तुम परम सुखी होओगे। तुम्हें अखण्ड आनन्द प्राप्त होगा। अब प्रश्न यह है कि हमारे पास रहनेको बढ़िया कोठी है, चढ़नेको मोटरें हैं, खानेकी भी सभी सामग्रियाँ और अप्सराओंके समान हमारी स्त्रियाँ हैं, लाखों-करोड़ों रुपये हमारे बैंकमें जमा हैं, हम तो सभी प्रकार सुखी हैं, फिर हम भगवान्का भजन क्यों करें? हम क्यों भजन, सन्ध्यावन्दन, नाम-संकीर्तन और शास्त्राध्ययनके चक्करमें फँसें? हमें दुःख क्या है? हमें भगवान्से क्या मतलब?

आप ध्यानसे देखें तो संसारमें सुखी कौन है? संसारी चीजोंसे सब प्रकारसे सुखी कौन हुआ है? अमीर सेव-अंगूरोंको खाकर जितना सुखी होता है, एक किसान बजरीकी रोटियोंमें भी वही स्वाद पाता है। आजसे बीस वर्ष पहले जिन रूखी रोटियोंको खानेमें मुझे जितना स्वाद आता था, आपसे सत्य-सत्य कहता हूँ, उतना स्वाद आज बढ़िया-से-बढ़िया फलोंमें नहीं आता। स्वाद चीजोंमें नहीं, स्वाद तो भूखमें है। जिस अमीरको भूख ही नहीं लगती, उसके लिये भाँति-भाँतिके व्यंजन मिट्टीके समान हैं और जिसे भूख लगती है, उसे भुने हुए चनोंमें बादामोंका स्वाद आता है। कहनेका मतलब यह है कि कुछ भी खाइये यदि आपको भूख है तो खानेकी सभी चीजोंमें आनन्द आयेगा और भूख नहीं तो सभी मिट्टी।

इसी प्रकार सांसारिक सुखोंकी बात है। राजा जितना अपनी रानीके साथ सुख पाता है, एक सूकर अपनी सूकरीके साथ भी उतना ही सुख पाता है। उन दोनोंके सुखमें कोई अन्तर नहीं।

एक अमीर खूब गुलगुले गद्देपर सोता है, एक गरीब बाहर कंकड़ोंपर। सो जानेपर दोनों ही एक-से हैं। न गरीबको कंकड़ोंकी सुधि रहती है, न अमीरको गुलगुले गद्देकी। यदि अमीरको चिन्ता है तो उसे वह गुलगुला गद्दा शूलकी सेजके समान है। अतः निद्रा भी गरीब-अमीरकी एक-सी है।

आप कहेंगे कि अमीरके पास बहुत-से नौकर हैं, धन है, मकान है, अन्न-जलकी बहुतायत है, वैद्य हैं, दवाएँ हैं, उसे डर नहीं; परंतु हमारे पास तो कुछ नहीं, अतः हमें चोरका, दरिद्रताका, वर्षाका, भूख-प्यासका और बीमारीका डर है। यह बात भी ठीक नहीं। अमीरको भी सदा डर बना रहता है। इतनी बड़ी अँगरेज सरकार, जिसके राज्यमें कभी सूर्य अस्त नहीं होता था, वह भी कई राष्ट्रोंको युद्धमें लगे देखकर भयभीत रहती थी। गरीब उतने बीमार नहीं होते जितने अमीर बीमार होते हैं। मेरे पास बड़े-बड़े अफसर आते हैं, बड़े-बड़े नामी वकील, खूब बड़े-बड़े जमींदार, ताल्लुकेदार। उनसे जब मैं कहता हूँ—भाई! तुम ऐसा कठोर काम क्यों करते हो? तब वे कहते हैं—'महाराज! हम दिलसे नहीं चाहते कि ऐसा करें, किंतु क्या करें पेटके लिये सब कुछ करना पड़ता है। इसे न करें, तो खायें क्या?' इससे पता चलता है कि गरीब हो चाहे अमीर हो, लखपती हो, राजा हो, पेटकी चिन्ता सभीको है। इससे सिद्ध यही हुआ कि खाने-पीने, विषय-भोग, निद्रा और आत्मरक्षाकी चिन्ता सबको समान है। अमीर सोना नहीं खाते और गरीब धूलि नहीं फाँकते। इन सब बातोंमें सब समान हैं। इन संसारी चीजोंसे किसीको पूर्णरूपसे सन्तोष न हुआ, न कभी होगा। चिन्तासे सभी दुखी होते हैं। बीमारीका, मरनेका दुःख सभीको समान होता है। अतः भगवान्के भजनमें अमीर या कंगालका कोई सवाल नहीं। भगवान्का भजन तो गरीब-से-गरीबको, अमीर-

से-अमीरको, ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालतकको सभीको समानरूपसे करना है।

भगवान्‌के भजनका फल विषयोंकी प्राप्ति नहीं है। भगवान्‌के भजनका फल है, आत्मिक शान्ति। आन्तरिक आनन्द।

यदि एक सिपाही अपने सभी कामोंको भगवान्‌के लिये करता है, वह प्रभुके ऊपर विश्वास करके ही सब कामोंमें हाथ लगाता है। अपने वेतनके थोड़े ही रुपयोंमें बाल-बच्चोंका पालन करके सन्तोषके साथ काम करता हुआ भगवान्‌का भजन करता है और उसका मालिक जज लाखों रुपये पाता है, किंतु उसे ईश्वरपर विश्वास नहीं, आवश्यकतासे अधिक खर्च है, उसका इतनेमें भी पूरा नहीं पड़ता तो वह सिपाही उस जजसे बड़ा है। भगवान्‌के भजनकी सभीको समान रूपसे आवश्यकता है। भगवद्भजनसे आत्मिक तुष्टि होती है। जिसे भगवान्‌के ऊपर विश्वास है, उसे कभी कोई क्लेश नहीं। जनक इसके उदाहरण हैं। मिथिलामें आग लगनेपर भी वे कहते हैं—मेरे जाने आग लगो चाहे पानी बरसो, मुझे न आन्तरिक क्लेश है, न उद्वेग। इसके विपरीत जिन्हें भगवान्‌पर विश्वास नहीं वे करोड़पति, अरबपति भी कभी आन्तरिक सुख नहीं पा सकते। विलायतमें एक दियासलाईके व्यापारी थे। वे बहुत साधारण आदमीसे बड़े धनी बन गये थे। अन्तमें उन्हें बहुत बड़ा घाटा हुआ और उन्होंने दु:खके मारे आत्महत्या कर ली। यदि आप यह समझते हों कि भगवान्‌के भजन करनेवालोंके चेहरेसे कोई अग्निकी ज्वाला निकलने लगेगी या वे सहसा अमीर बन जायँगे, उनके कोठियाँ चल जायँगी, यह ठीक नहीं है। भगवान्‌के भक्त गरीब भी हो सकते हैं और धनी भी। वे होंगे हमलोगोंकी तरह हाथ-पैरवाले साधारण मनुष्य ही, किंतु उनकी आन्तरिक शान्ति हमसे लाखोंगुनी अधिक होगी।

आज हम सुनते हैं, रूसमें लोग भगवान्‌को नहीं मानते, इससे वे सब बड़े सुखी हैं। मैं आपसे दावेके साथ कहता हूँ कि वे बड़े दुखी हैं, बड़े अशान्त हैं और आप देखेंगे वे अपनी अशान्तिके कारण दु:ख पाकर भटक-भटककर अन्तमें भगवान्‌की ही शरणमें आयेंगे। अन्तमें सबको वहीं आना है। वहाँ आये बिना किसीका कल्याण नहीं।

अत: भगवान्‌का भजन कोई खास तरहके ही लोग करें यह बात नहीं, भगवान्‌के भजनकी उन सभीको जरूरत है, जो आन्तरिक शान्ति चाहते हैं, फिर चाहे वे गरीब हों या अमीर, स्त्री हों या पुरुष अथवा ब्राह्मण हों या चाण्डाल। भगवान्‌की शरण सभीको लेनी होगी। दाल-भात वही खा सकता है, जिसे भूख हो। दाल-भात खानेमें सरकारी नौकर, देशभक्त, स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीचका कोई भेद नहीं। जिसे भूखकी निवृत्ति करनी हो, वही भोजन कर सकता है, इसी प्रकार भगवान्‌का भजन भी सभी समानरूपसे कर सकते हैं। आप सैनिक हैं तो बन्दूक चलाइये, लड़ाईमें वीरतासे लड़िये, किंतु भगवान्‌को कभी न भूलिये। यदि आप परोकारी हैं तो हजारोंके भोजनका प्रबन्ध कीजिये, अनाथालय खोलिये, किंतु भगवान्‌को सदा स्मरण रखिये। आप नौकर हैं तो ईमानदारीसे नौकरी बजाइये, किंतु अपने सच्चे मालिककी स्मृतिको क्षण-भरके लिये भी न भुलाइये। सब काम करते हुए—सभी प्रकारकी स्थितिमें रहते हुए भगवान्‌को न भूलिये। आपकी आन्तरिक शान्ति नष्ट न होगी। हरेक स्थितिमें आप सुखी रहेंगे।

आजके युगमें हम सभी लोग ध्यानद्वारा भगवान्‌का भजन नहीं कर सकते। ध्यान करनेवाले विरले ही आजकल मिलेंगे; क्योंकि यह साधन सत्ययुगका है। समय ऐसा आ गया कि हम बड़े-बड़े यज्ञ-याग करके भी भगवद्भजन नहीं कर सकते। आजकल शुद्ध सामग्री नहीं, बड़ी आयु नहीं, उतना धन नहीं, हमें स्वतन्त्रता नहीं। जंगल भी नहीं रहे। एक-एक तिल जमीनपर सरकारका कब्जा हो गया। अत: यज्ञ-याग भी आज हमारे लिये असम्भवसे ही हो गये हैं। इस उपायसे त्रेताके मनुष्य भगवदाराधन किया करते थे। भगवान्‌की विधिवत् पूजा भाँति-भाँतिकी सामग्रियोंसे होती है।

उसके लिये भी हमारे पास धन नहीं। द्वापरके लोग भगवत्-परिचर्या करके प्राय: भगवद्भजन करते थे।

हम कलियुगी जीव हैं, हमारे चित्तकी वृत्तियाँ स्वभावत: विषयोंकी ओर जाती हैं। हम अल्पबुद्धि हैं, हमारी छोटी आयु है, हमारे लिये तो प्राचीन महर्षियोंने एक ही साधन बताया है—केवल भगवन्नाम-गुणका कीर्तन। भगवान्‌के गुणोंका कीर्तन कीजिये, उनकी सुमधुर कथाएँ सुनिये, उनके नामोंका ताल-स्वरसे झाँझ-मृदंगके साथ कीर्तन कीजिये, साधुओंका संग कीजिये। इसीसे आप परमसिद्धि प्राप्त कर लेंगे। मैं यह नहीं कहता कि संकीर्तन करनेके लिये आप अपने कामोंको छोड़ दें। आप जिसे धर्म समझकर अपना कर्तव्य मानकर कर रहे हैं, उसे करते जाइये, किंतु घण्टे-दो-घण्टे समय निकालकर भगवान्‌के नामोंका सब मिलकर या अकेले कीर्तन कीजिये। भगवान्‌के मंगलमय नामोंका श्रद्धापूर्वक जप कीजिये। नामप्रेमी अनुरागी सन्तोंका सत्संग कीजिये। भगवान्‌की दिव्य कथा सुनिये। यदि इन कामोंको आप सच्चे हृदयसे प्रेमपूर्वक करेंगे तो आपको निश्चय ही आत्मिक शान्ति मिलेगी। फिर आप न तो दु:खोंमें तड़फड़ायँगे और न संसारी सुखोंमें फूलकर कुप्पा ही बन जायँगे। आपको सुख-दु:ख दोनों समान प्रतीत होंगे। आप अपने सभी कामोंमें अपने इन भजनीय भगवान्‌का प्रत्यक्ष हाथ देखेंगे। आप उन प्रभुके आनन्दमें मस्त हो जायँगे।

कलियुगमें भगवन्नाम-संकीर्तन ही एक ऐसा सर्वोपयोगी साधन है, जिसे गरीब, अमीर, स्त्री-पुरुष सभी श्रेणी, सभी वर्णके लोग समानरूपसे कर सकते हैं।

तभी तो भगवान् व्यासजीने कहा है—

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

'सत्ययुगमें जो फल ध्यानसे मिलता था, त्रेतामें जो यज्ञोंसे और द्वापरमें जो अर्चापूजासे मिलता था, वही फल कलियुगमें केवल भगवन्नाम-कीर्तनसे मिलता है।'

अत: मेरी यह प्रार्थना है कि आप भगवन्नामकीर्तनको अपने जीवनका एक आवश्यकीय दैनिक कर्तव्य बना लीजिये। नहाने-खानेकी भाँति भगवन्नामकीर्तन भी आपके जीवनका एक परमावश्यक अंग बन जाय।

विशेषकर नवयुवकोंसे मेरी प्रार्थना है, आप इस धर्म-प्रधान देशमें उत्पन्न हुए हैं। आप पश्चिमीय विलास-प्रधान देशोंके निवासी नहीं हैं। आप भगवान्‌को कभी न भूलें। भगवान्‌पर विश्वास रखकर आप अपना कार्य करें। भगवान्‌के भजनसे उनपर विश्वास करनेसे क्या होता है, इसे मैं आपको ठीक तरहसे समझा न सकूँगा। आप विश्वास कीजिये, आपको स्वत: ही अनुभव होगा। भगवान्‌की शरणमें जानेसे, संकीर्तन करनेसे आप सुखी होंगे, आनन्दित होंगे। कभी झूठ न बोलनेवाले अनुभवी सन्तोंका यह विश्वास है। यदि भगवान्‌पर विश्वास नहीं होता तो उन्हींसे प्रार्थना कीजिये कि 'प्रभो! हमें विश्वास कराओ' वे ही विश्वास भी करायेंगे।

राजाको सीख

एक राजाने किसी गाँवमें एक नया महल बनवाया। उस महलके बगलमें एक गरीब बुढ़ियाकी झोंपड़ी थी। उस झोंपड़ीका धुआँ राजाके महलमें जाता था। इसलिये राजाने बुढ़ियाके पास सिपाही भेजकर उसे आज्ञा दी कि वह अपनी झोंपड़ी वहाँसे हटा ले। बुढ़ियाने इनकार कर दिया। सिपाहियोंने बहुत डाँटा-फटकारा, पर वह नहीं मानी। तब उसे राजाने बुलाकर पूछा कि—'तू झोंपड़ी क्यों नहीं हटाती?' उसने कहा—'महाराज! मैं तो आपका इतना बड़ा आलीशान महल देख सकती हूँ, जरा भी नहीं जलती और आपकी आँखोंमें मेरी टूटी-फूटी फूसकी मढ़ैया भी खटकती है। यही क्या आपका न्याय है?' राजा सुनकर लज्जित हो गया और बुढ़िया माईका सत्कार करके उसको बिदा कर दिया।

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

भगवान् कहते हैं—

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(गीता ७।७)

—'हे धनंजय! मेरेसे बढ़कर इस जगत्का दूसरा कोई किंचिन्मात्र भी कारण नहीं है। जैसे सूतकी मणियाँ सूतके धागेमें पिरोयी हुई होती हैं, ऐसे ही सम्पूर्ण जगत् मेरेमें ही ओतप्रोत है।'

तात्पर्य है कि जैसे सूतकी मणियाँ हैं, सूतका ही धागा है, सब सूत-ही-सूत है, ऐसे ही संसारमें मैं-ही-मैं हूँ अर्थात् मेरे सिवा कुछ नहीं है। अतः भगवान्की दृष्टिसे भी संसार भगवत्स्वरूप है और महात्माओंकी दृष्टिसे भी संसार भगवत्स्वरूप है—**'वासुदेवः सर्वमिति'** (गीता ७।१९)। फिर यह संसार कहाँ है? भगवान् कहते हैं कि जो अपरा प्रकृति है, उससे एक विलक्षण मेरी परा प्रकृति है, जिसको जीव कहते हैं। उस जीवने जगत्को धारण कर रखा है—**'ययेदं धार्यते जगत्'** (गीता ७।५)। अतः जगत्से सम्बन्ध-विच्छेद करनेका दायित्व जीवपर ही है। जीवका धारण किया हुआ जगत् ही इसके दुःखका हेतु है। अब इसको समझानेके लिये एक बात कहता हूँ, आप ध्यान दें।

शास्त्रोंमें आया है कि सृष्टि दो तरहकी है। एक भगवान्की रची हुई सृष्टि है और एक जीवकी रची हुई सृष्टि है। भगवान्की रची हुई सृष्टि कभी किसीको दुःख नहीं देती। उसने कभी दुःख दिया नहीं, कभी दुःख देगी नहीं और कभी दुःख दे सकती भी नहीं। भगवान्की रची हुई सृष्टि अगर जीवको दुःख देगी तो जीव दुःखसे कभी छूट सकेगा ही नहीं। तो फिर दुःख कौन देता है? जीवकी बनायी हुई सृष्टि ही दुःख देती है। जीवकी बनायी हुई सृष्टि क्या है? यह मेरी माँ है, मेरा बाप है, मेरी स्त्री है, मेरा बेटा है, मेरा भाई है, मेरी भौजाई है, ये हमारे पक्षके हैं, ये दूसरोंके पक्षके हैं; ये हमारी जातिके हैं, ये हमारी जातिके नहीं हैं—यह जो भेद बनाया हुआ है, यह जीवकी रची हुई सृष्टि है। शरीर भगवान्का रचा हुआ है और उसके साथ सम्बन्ध जीवका रचा हुआ है। यह सम्बन्ध जीवकी सृष्टि है, जो दुःख देती है। जीव जिनके साथ अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ता, उनसे दुःख नहीं होता। राग और द्वेष ही जीवके शत्रु हैं—**'तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ'** (गीता ३।३४)। जीव राग और द्वेष कर लेता है, मेरा और तेरा कर लेता है, यही वास्तवमें जीवको दुःख देता है। यह मेरा और तेरा, ठीक और बेठीक, अनुकूल और प्रतिकूल, ये हमारे हैं और ये तुम्हारे हैं—यह दशा जीवने धारण की है और इसीसे इसको दुःख पाना पड़ता है।

ईश्वरके रचित तो स्त्री-पुरुषोंके शरीर हैं। सबके शरीर ईश्वरकी प्रकृतिसे बने हुए हैं। इनके मालिक तो हैं परमात्मा और धातु चीज है प्रकृति। अतः यह सृष्टि न दुःख देनेवाली है और न सुख देनेवाली है। अगर देखा जाय तो यह सृष्टि इसके व्यवहारको सिद्ध करती है, इसकी मदद करती है। दुःख तो वहीं होता है, जहाँ मेरा-तेरा पैदा कर लेते हैं और यह मनुष्यका बनाया हुआ है—**'ययेदं धार्यते जगत्।'** जीव जगत्को धारण करता है, इसीसे सुख होता है, दुःख होता है, बन्धन होता है, चौरासी लाख योनियोंकी प्राप्ति होती है—**'कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥'** (गीता १३।२१)। सत्त्व, रज, तम—तीनों गुण तो बेचारे पड़े रहते हैं, कोई बाधा नहीं देते, परंतु इनका संग करनेसे जीव ऊर्ध्वगति, मध्यगति अथवा अधोगतिमें जाता है अर्थात् सत्त्वगुणका संग करनेसे ऊर्ध्वगतिको, रजोगुणका संग करनेसे मध्यगतिको और तमोगुणका संग करनेसे अधोगतिको जाता है। गुणोंका संग यह स्वयं करता है। अपरा प्रकृति किसीके साथ कोई सम्बन्ध नहीं करती। सम्बन्ध न प्रकृति करती है, न गुण करते हैं, न इन्द्रियाँ करती हैं, न मन करता है, न बुद्धि करती है। यह स्वयं

ही सम्बन्ध करता है, इसीलिये सुखी-दुःखी हो रहा है, जन्म-मरणमें जा रहा है। जीव स्वतन्त्र है; क्योंकि यह परा (श्रेष्ठ) प्रकृति है। वह तो बेचारी अपरा प्रकृति है। वह कुछ नहीं करती। उससे सम्बन्ध जोड़कर उसका सदुपयोग-दुरुपयोग करके, ऊँच-नीच योनियोंमें जाते हैं, भटकते हैं। यह **'ययेदं धार्यते जगत्'** का अर्थ हुआ।

अपनेको सुख-दुःख किसका होता है? हमारा कोई सम्बन्धी है, प्रेमी है, वह मर जाता है तो दुःख होता है और जी जाता है, अच्छा हो जाता है तो सुख होता है। यह मेरापन और तेरापन मनुष्यका बनाया हुआ है। यदि मनुष्य निर्मम और निरहंकार हो जाय, न प्रकृतिके साथ ममता रखे, न अहंता रखे तो दुःख मिट जायगा और शान्ति प्राप्त हो जायगी—**'निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥'** (गीता २।७१) यह कर्मयोगकी दृष्टिसे है। ज्ञानयोगकी दृष्टिसे निर्मम-निरहंकार होनेपर ब्रह्मप्राप्तिका पात्र हो जायगा—**'अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्। विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥'** (गीता १८।५३) भक्तियोगकी दृष्टिसे निर्मम-निरहंकार होनेपर सुख-दुःखमें सम हो जायगा, क्षमावान् हो जायगा और भगवान्‌का प्यारा हो जायगा—**'निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी।'** (गीता १२।१३) इस तरह कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनोंसे मनुष्य निर्मम और निरहंकार हो जाता है।

यह ममता और अहंता हमारी बनायी हुई है। यह जीवकृत सृष्टि है। जीवकृत सृष्टि ही जीवको दुःख देती है, बाँधती है। जीव स्वयं ही सृष्टि बनाकर बँधता है। जैसे रेशमका कीड़ा रेशम बनाकर उसमें बँध जाता है, उसमें ही फँसकर मर जाता है, इसी तरहसे जीवने अपना जाल बुन लिया, राग और द्वेष कर लिया। इसीसे यह फँसा हुआ है, बँधा हुआ है। इसीने जगत्‌को धारण कर रखा है। जगत्‌की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। कारणरूपसे देखें तो प्रकृति है और मालिकरूपसे देखें तो परमात्मा है। बाँधनेवाला जगत् तो जीवने ही बना रखा है। यदि यह निर्मम और निरहंकार हो जाय तो निहाल हो जाय! भगवान्‌ने बड़ी कृपा करके दो बात कह दी कि तुम **'निर्ममो निरहङ्कारः'** हो जाओ, केवल अपनी बनायी हुई अहंता और ममताको मिटा लो तो ज्ञान हो जायगा, पूर्णता हो जायगी। यह अहंता-ममता आपकी बनायी हुई है। पहले जन्ममें और जगह ममता थी, इस जन्ममें और जगह ममता है। इस शरीरमें रहते हुए भी आप मकान बदल देते हो, सम्बन्ध बदल देते हो, दुकान बदल देते हो, अपना बना लेते हो और फँस जाते हो। अतः आपने ही इसको जगत्-रूपसे धारण कर रखा है। परमात्माकी दृष्टिमें यह जगत् नहीं है। महात्माकी दृष्टिमें भी यह जगत् नहीं है। अगर अहंता-ममता छोड़ दो तो जगत् नहीं रहेगा, दुःख मिट जायगा।

श्रोता—स्वयंमें कर्तापनका भाव आ जाता है!

स्वामीजी—हाँ, उसको आप ही स्वयंमें लाते हैं। यह मेरा है, यह तेरा है; यह मेरे अनुकूल है, यह मेरे प्रतिकूल है; यह हमारे पक्षका है, यह दूसरे पक्षका है; यह हमारे सम्प्रदायका है, यह दूसरे सम्प्रदायका है—यह अपना खुदका ही बनाया हुआ है। इसलिये इसका त्याग करनेका दायित्व जीवपर है। अगर यह परमात्माका बनाया हुआ होता तो इसके त्यागका दायित्व परमात्मापर होता।

परमात्माकी बनायी सृष्टिमें उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि जो कुछ होता है, वह आपमें बिलकुल दखल नहीं देता। वस्तुएँ आपके व्यवहारमें काम आती हैं, आपपर कोई बन्धन नहीं करतीं, आपको परवश नहीं करतीं, परतन्त्र नहीं करतीं। आप खुद ही उनमें अहंता-ममता करके फँस जाते हैं। अतः **'ययेदं धार्यते जगत्'** का तात्पर्य है कि बन्धन आपका ही बनाया हुआ है।

सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे जीव मोहित हो जाता है—**'त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।'** (गीता ७।१३) सात्त्विकी, राजसी और तामसी वृत्तियोंसे मोहित होकर जीव उनमें फँस जाता है, परंतु न सात्त्विकी वृत्ति हरदम रहती है, न राजसी वृत्ति हरदम रहती है और न तामसी वृत्ति हरदम रहती है। गुणोंका तो नाशवान् स्वभाव है, उनका नाश होता ही रहता है। आप कितना

ही अच्छा मानो, गन्दा मानो; भला मानो, बुरा मानो, कैसा ही मानो, वे गुण तो नष्ट होते ही हैं। उनमें परिवर्तन तो होता ही रहता है। आप ही सम्बन्ध जोड़ करके उनको पकड़ लेते हो। परा, श्रेष्ठ प्रकृति होते हुए भी आपने अपरा प्रकृतिको धारण कर रखा है, जन्म-मरणको धारण कर रखा है, महान् दु:खको धारण कर रखा है। आप छोड़ दो तो छूट जायगा। प्रत्यक्ष उदाहरण है कि आपकी कन्या बड़ी हो जाती है तो चिन्ता होने लगती है और जब घर-वर अच्छा मिल जाता है तथा आप कन्यादान कर देते हो तो आपकी वह चिन्ता मिट जाती है। कन्या वही है, आप वही हो, सृष्टि वही है, पर आपको चिन्ता नहीं है। कारण कि जबतक 'मेरी है' तबतक चिन्ता है और अब, 'मेरी नहीं है' तो अब चिन्ता नहीं है। तात्पर्य है कि अपनी अहंता और ममतासे ही दु:ख होता है।

अहंताको लेकर 'मैं साधु हूँ, मैं ऐसा हूँ, मेरेको ऐसा कह दिया, मेरेको ऐसा कर दिया'—यह आफत किसने पैदा की है? हम ऐसे-ऐसे हैं, हम पढ़े-लिखे हैं; हम कौन हैं, समझते हो आप? यह आफत आपने ही बनायी है। आपने ही अपमान पकड़ लिया, मान पकड़ लिया, महिमा पकड़ ली, निन्दा पकड़ ली, अनुकूलता पकड़ ली, प्रतिकूलता पकड़ ली। यह आपकी ही पकड़ी हुई है। आप न पकड़ो तो कोई दु:ख देनेवाला है नहीं, हुआ नहीं, होगा नहीं, हो सकता नहीं। अपनी सृष्टि बनाकर आप ही फँस गये। आपने ही जगत्‌को धारण कर लिया, नहीं तो भगवान् कहते हैं कि सब कुछ मेरेसे ही व्याप्त है—'**मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना**' (गीता ९।४), '**येन सर्वमिदं ततम्**' (गीता ८।२२; १८।४६)। ये बातें याद कर लेनेमात्रकी नहीं हैं। याद करोगे तो जैसे मैं व्याख्यान देता हूँ, वैसे आप भी दे दोगे, पर उससे कल्याण नहीं होगा। ये बातें मूलमें समझनी हैं कि हमें इसमें फँसना नहीं है, मैं-मेरा नहीं करना है। '***मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥***' (रा०च०मा० ३।१५।२) मैं और मेरा, तू और तेरा, यह और इसका, वह और उसका—यही बन्धन है, जो जीवका बनाया हुआ है। इसको वह छोड़ दे तो निहाल हो जाय।

जबतक मैं और मेरेपनको धारण किये रहोगे, तबतक दु:ख नहीं मिटेगा। यह मैं-मेरापन ही खास बन्धन है।

मैं मेरे की जेवरी, गल बँध्यो संसार।
दास कबीरा क्यों बँधे, जाके राम अधार॥

सब बन्धनोंकी एक ही चाबी है—मैं-मेरेका त्याग। मैं-मेरेको त्याग दो तो बन्धन है ही नहीं।

श्रोता—पहले ममताका त्याग होगा या अहंताका?

स्वामीजी—आपकी मरजी आये सो कर लो। ममताका सर्वथा त्याग कर दो तो अहंताका त्याग हो जायगा और अहंताका सर्वथा त्याग कर दो तो ममताका त्याग हो जायगा। जो आपको सुगम पड़े, वह कर लो। एकका त्याग करो तो दूसरेका त्याग अपने-आप हो जायगा। अहंताके साथ ममता और ममताके साथ अहंता रहती है। ममताका त्याग करो तो अहंता सर्वथा चली जायगी और अहम् ही छोड़ दो तो ममता कहाँ टिकेगी? आप करके देख लो।

यस्या बीजमहङ्कृतिर्गुरुतरं मूलं ममेतिग्रहो भोगस्य स्मृतिरङ्कुरः सुतसुताज्ञात्यादयः पल्लवाः।
स्कन्धो दारपरिग्रहः परिभवः पुष्पं फलं दुर्गतिः सा मे ब्रह्मविभावनापरशुना तृष्णालता लूयताम्॥

जिसका बीज अहंकार है, 'यह मेरा है' इस प्रकारका आग्रह ही गुरुतर मूल है, अंकुर विषय-चिन्तन है, पुत्र, पुत्री, जाति आदि पत्ते हैं, स्त्री-संग्रह स्कन्ध हैं, अनादर पुष्प है और फल दुर्गति है, वह मेरी तृष्णारूपिणी लता ब्रह्मविभावनारूपी परशुसे छिन्न हो।

प्रेमका पन्थ निराला है!

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

जरा-सा भी पत्ता खटकता है कि शबरी चौंक पड़ती है कहीं उसके राम तो नहीं आ रहे हैं! थोड़ी-सी भी आवाज हुई कि वह सोचने लगी शायद उसके प्रियतम भगवान् राम आ रहे हैं! बार-बार कुटियासे बाहर जा-जाकर वह मार्ग देख आती है। उनके मार्गपर उसके पलक-पाँवड़े बिछे हुए हैं। उसे अपने गुरुदेव मतंग ऋषिके इस वाक्यपर पूर्ण विश्वास है कि श्रीराम एक दिन अवश्य ही उसकी कुटियापर अपनी चरण-रज बिखेरने आयेंगे। इसी विश्वासके बलपर तो वह इतने कालसे चुपचाप उनके आगमनकी पावन प्रतीक्षामें अपना समय बिता रही है।

ऐसा भी नहीं है कि वह प्रियतमके आतिथ्यकी ओरसे उदासीन हो। इसका तो उसे बहुत पहलेसे ही ध्यान है। वह प्रतिदिन जंगलसे कन्द-मूल-फल बीन लाती है। उनमेंसे वह प्रत्येकको भलीभाँति देखती है। जो उसे अच्छा प्रतीत होता है, उसे अपने प्यारे रामके लिये रख छोड़ती है और जो खराब होता है, उसे स्वयं खा डालती है।

अचानक एक दिन उसे समाचार मिलता है कि उसके आराध्यदेव आ रहे हैं! प्रियतम ज्ञानशिरोमणि ऋषियोंसे पूछते हैं—'महाराज! इधर कहीं शबरी भीलनीकी झोंपड़ी है?' आश्चर्यसे चकित ऋषिगण उन्हें भीलनीकी कुटियाका मार्ग दिखाते आ रहे हैं! उनकी समझमें ही नहीं आ रहा है कि आखिर इसका कारण क्या है? उनकी कुटियोंमें न पधारकर भगवान् उस भीलनीकी कुटियाकी ओर क्यों जा रहे हैं? पर—समझमें आनेलायक बात भी तो हो! वे बेचारे क्या जानें कि प्रेमके आगे ज्ञान पानी भरता है। भक्तिके आगे विद्वत्ता हाथ बाँधे खड़ी रह जाती है। सच्ची लगनके सम्मुख सारा पाण्डित्य सींकेपर टँगा रह जाता है! जहाँ सर्वात्मसमर्पण होता है, अनन्य शरणागति होती है, प्रियतमके चरणोंपर सब कुछ दे डाला जाता है। वहाँ ज्ञान, कर्म, उपासना, व्रत, नियम, उपवास—सभी एक किनारे खड़े रह जाते हैं! वहाँ तो वह मतवाला प्रेमी प्रेमास्पदपर एकछत्र साम्राज्य जमा बैठता है। सब कुछ देकर सब कुछ खरीद लेता है। प्रेमकी झीनी-सी जंजीरमें प्रेमस्वरूप सच्चिदानन्दको ही बाँध लेता है। अहा, कितना अनोखा है यह प्रेम-बाजारका अलवेला सौदा!

शबरीकी ओर प्रभुका यह प्रेम देखकर ऋषिगण अपनी निस्सार साधनाको धिक्कारने लगते हैं। प्रभु-प्रेमकी दीवानी शबरीकी आजतक उन्होंने न जाने कितनी अधिक उपेक्षा और अवहेलना की है, अपार घृणा की है, उसकी छायातकको अपने पास नहीं फटकने दिया है और आज—आज वही शबरी उन सबसे बाजी मार ले गयी है। भगवान् आज उसीकी कुटियामें अपनी चरणरज बिखेरने जा रहे हैं। धन्य है, धन्य है—इस अशिक्षित मूर्ख भीलनीका प्रेम—जिसके वशीभूत हो आज वे परम दयालु श्रीभगवान् उसकी ओर बरबस खिंचे चले जा रहे हैं! आज उनका सारा गर्व, सारा अहंकार—चूर-चूर होकर भीलनी शबरीके चरणोंपर बिखर जानेको व्याकुल हो रहा है।

इधर शबरीका और ही विचित्र हाल है। प्रियतमके आगमनके समाचारने उसकी अजीब ही अवस्था बना दी है। वे आ रहे हैं—भला, इससे भी बढ़कर किसी प्रेमीको और कोई मंगल-संवाद हो सकता है? जिनकी प्रतीक्षा करते-करते उसकी आँखें पथरा गयीं, दिन-रात, मास-वर्ष—सभी एक-एक कर व्यतीत होते गये—पर वे आजतक नहीं आये, वे ही—परम प्रेमास्पद आज आ रहे हैं—यह आनन्द भला, कोई हृदयमें समानेलायक बात है? इस प्रेमानन्दको रखनेके लिये उसे कोई ठौर ही ढूँढ़े नहीं मिलता! कितना सुहावना है आजका दिन—जब उसकी वर्षोंकी नहीं-नहीं, जन्म-जन्मान्तरोंकी साधना

सफल होने जा रही है!

आजहीके दिनके लिये तो वह इतनी लम्बी प्रतीक्षा करती आ रही है। अहा, कितनी कठिन है यह अनवरत साधना! दिन-पर-दिन बीतते चले जाते हैं, मासों-पर-मास निकलते चले जाते हैं, सालोंपर सालें गुजरती चली जाती हैं—पर, यहाँ हताश होनेका काम नहीं। सतत जागरूक रहना पड़ता है। पल-पलपर प्यारेकी यादमें मशगूल रहना पड़ता है। हर घड़ी उनके मार्गपर आँखें बिछाये चुपचाप बैठा रहना पड़ता है। क्या पता, प्रियतम कब आ जायँ? वे तो सुबह और शाम, दोपहर और आधी रात, वर्षा और तूफान, आँधी और पानी, गर्मी और सर्दी—कुछ देखते नहीं, जब जी चाहता है तभी पहुँच जाते हैं। प्रेमी उनके स्वागतके लिये प्रस्तुत न रहे, वे आकर द्वारसे वापस लौट जायँ तो इससे बढ़कर प्रेमीके लिये और दुःखकी बात हो ही क्या सकती है?

शायद तुम कहो कि यह प्रतीक्षा तो बड़ी बुरी चीज है तो भैया, साधना और सो भी प्रेम-साधना—कोई सरल बात नहीं है! सभीका मन उसमें नहीं लग सकता। तभी तो सभी लोग प्रभुके प्यारे नहीं बन पाते? सच्चे प्रेमियोंको छोड़कर और सबको तो इस मार्गमें नीरसताका ही बोध होता है। सभी वेदान्तको, योग और उपासनाको शुष्क विषय कहा करते हैं, किसलिये? इसी अनवरत साधनाहीके कारण तो! यह प्रतीक्षा, यह इन्तजारी ही तो लोगोंको खलती है और इसीसे अनेक इस मार्गपर आकर इसे छोड़ बैठते हैं, पर भैया, प्रेमीको इस प्रतीक्षामें ही आनन्द मिलता है, तभी तो वह हँस-हँसकर कहा करता है कि—

'वस्लमें हिज्रका गम, हिज्रमें मिलनेकी खुशी,
कौन कहता है जुदाईसे विसाल अच्छा है।'

वे तो इसे प्रेम-मिलनसे भी उत्तम वस्तु समझते हैं। भला, कुछ ठिकाना है ऐसे मस्तोंकी अलबेली मस्तीका!

हाँ, तो शबरीके हर्षका आज पार नहीं है। वह कभी कुटियाके बाहर जाती है, कभी भीतर! कभी हाथकी मालामें सुमन गूँथने बैठ जाती है, कभी द्वारकी ओर ताकने लगती है। कभी झाड़ू उठाकर द्वारके आस-पासका सारा मार्ग बुहार आती है—कि कहीं कोई कंकड़ी उसके प्रियतमके पावन पदारविन्दोंमें चुभ न जाय। कभी चुपचाप बैठकर सोचने लगती है कि वे परम प्रेमास्पद जब आयेंगे तो मैं किस प्रकारसे उनका स्वागत करूँगी। किस भाँति उनकी अभ्यर्थना करूँगी। किन शब्दोंमें उनसे वार्तालाप करूँगी!—पर इन सब व्यापारोंमेंसे किसीमें भी उसका मन नहीं लगता। चित्तकी बड़ी ही विचित्र अवस्था है। कुछ समझमें ही नहीं आता कि वह क्या करे? नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंका प्रवाह अविरल स्रोतकी भाँति बहता जा रहा है और वह उसीमें डूब-उतरा रही है। सारा होश-हवास गायब है। प्रियतम कितनी देरसे उसकी कुटियामें खड़े उसकी ओर देखते हुए मुसकराते खड़े हैं और वह उनकी ओर हक्की-बक्की-सी देखती हुई चुपचाप खड़ी है। अहा, यही तो है वह अनुपम मंजुल मूर्ति, जिसका वर्णन उसके गुरुदेवने उससे किया था! इसी मूर्तिको तो वह इतने अधिक दिनोंसे हृदयमें धारण किये हुए थी। इसीके दर्शनोंकी प्रतीक्षामें तो वह अभीतक अपने प्राणोंको शरीरके घेरेमें बन्द किये हुए थी! बंगभाषाके एक कविने ठीक ही तो कहा है कि—

साधनाये सिद्धि लाभ एके दिने नाँहि हय,
श्रमेर साफल्य आछे ए जगते सुनिश्चय,
सुदिन होलो आगत पूर्ण हके मनोरथ,
सद्यः जात तरु शाखा फुटे न कुसुम भार,
समये दिवेन विभु श्रम योग्य पुरस्कार,

परिश्रमका पुरस्कार तो मिलेगा ही, भले ही आज न मिले, दस दिन बाद मिले! साधनामें यदि साधकको शीघ्र ही सफलता नहीं मिलती तो हताश न होना चाहिये। उसे छोड़ बैठनेकी आवश्यकता नहीं है। यहाँ तो सतत प्रयत्नमें लगे रहना पड़ता है। 'राम' के शब्दोंमें यहाँ तो—

हर रात नयी इक शादी है, हर रोज मुबारक बादी है।
रिमझिम रिमझिम आँसू बरसें—क्या अब्र बहारें देता है॥
क्या खूब मजेकी बारिशमें, वह लुत्फ वस्लका लेता है।
किश्ती मौजोंमें डूबे हैं, बदमस्त उसे कब खेता है॥
यह गर्क़ाबी है जी उठना, मत झिझको उफ़! बरबादी है।
क्या रंगत है क्या राहत है, क्या शादी है आजादी है॥ हर०॥

भैया, यह तो भक्तिका मार्ग है, प्रेमका सौदा है। इसे 'सिरकी बाजी' कहा जाता है। फिर इसमें हताश होनेकी बात ही क्या है? निरन्तर अपने कर्तव्य-पथपर आरूढ़ रहो, कर्ममें संलग्न बने रहो, साधनाकी अग्नि प्रज्वलित बनाये रखो। एक-न-एक दिन अवश्य ही तुम्हारी साधना सफल होगी और शबरीकी भाँति तुम्हारी कुटियापर भी वे श्रीहरि पद-रज बिखेरने आ जायँगे! 'पगली! कुछ खिलाये पिलायेगी या यों ही, खड़ी-खड़ी मेरा मुख ताका करेगी?' प्रियतमके इन मधुर वाक्योंसे शबरीकी समाधि भग्न हुई। लज्जासे व्याकुल होकर वह अपने आराध्यदेवके चरणोंमें लिपट गयी और अपने नयनोंके पावन जलसे प्रियतमके चरण पखारनेमें संलग्न हो गयी! आँसुओंकी रेल-पेल मच गयी। इनकी मधुर वर्षामें यह प्रेमी और प्रेमास्पदका, भक्त और भगवान्‌का, जीव और ईश्वरका, शबरी और रामका—मधुर सम्मिलन हुआ। साधनाके मधुर फलको पाकर शबरी प्रेमानन्दमें विभोर हो गयी।

वह एकटकसे प्रियतमकी झाँकी करनेमें संलग्न है। आँसुओंकी मौन भाषामें ही वह अपने प्रियतमकी अभ्यर्थना कर रही है। उसके पास और तो शब्द ही नहीं हैं। किन शब्दोंमें वह अपने प्यारे प्रियतमकी आराधना करे। अन्तमें—

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥

मैं भला क्या जानूँ कि किन शब्दोंसे तुम्हारी पूजा की जाती है—कहकर वह पुनः गद्‌गद होकर अपने लाड़ले प्रेमीके चरणोंमें गिर पड़ी। पूजा और अर्चा, भजन और प्रार्थना, मन्त्र और श्लोक—उसके लिये अज्ञात लोककी वस्तुएँ हैं। वह इनमेंसे कुछ भी नहीं जानती। पर वे श्यामसुन्दर तो यह कुछ देखते नहीं। तभी तो ऐसे निर्मल हृदयवालोंसे उनकी पटरी बैठ जाती है। उनका तो यह वचन है कि—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

इसीसे तो वे भक्तोंपर इतनी जल्दी रीझ जाते हैं, तभी तो तुलसी बाबाने कहा है कि—

का भाषा का संसकृत प्रेम चाहिऐ साँच।
काम जु आवै कामरी का लै करिअ कुमाच॥

भैया, वे केवल संस्कृत, फारसी और अँगरेजी ही नहीं जानते, वे संसारकी सारी भाषाओंके ज्ञाता हैं। वेदकी ऋचाओं, कुरानकी आयतों, बाइबिलके समुल्लासोंके पाठहीसे वे केवल प्रसन्न होते हों—ऐसा नहीं है। अरे, वे तो अपने प्रेमीकी टूटी-फूटी, व्याकरणसे सर्वथा अशुद्ध भाषासे भी प्रसन्न हो जाते हैं। सच्चे प्रेमका एक आँसू ही उन्हें रिझा देनेके लिये, भक्ति-परवश कर देनेके लिये बहुत है—पर कोई हो भी तो वैसा आँसू ढुलकानेवाला! भैया, प्रेमकी मूक वेदनाकी भाषा तो उन्हें सबसे अधिक प्रिय है। प्रेमियोंकी टूटी-फूटी प्रार्थनामें उन्हें यजुर्वेदपाठी पण्डितके पाठसे कम आनन्द नहीं आता। रुदनकी मूक भाषाको समझना, उसमें अवगाहन करना, उसकी गहराईका पता लगाना—वे भली प्रकार जानते हैं। मन्त्रों और ऋचाओं, श्लोकों और स्तोत्रोंकी जितनी स्वच्छन्दतासे उनके घेरेमें पहुँचनेकी शक्ति है, उतनी ही शक्ति प्रेमसे गद्‌गद एक टूटी-फूटी पुकारमें भी है—इस बातको तुम भली प्रकार समझ रखो। भैया, वे तो वास्तवमें भाव देखा करते हैं। भावोंके वे सच्चे पुजारी हैं। जहाँ भी सच्चे भावसे उन्हें पुकारा गया, उनका स्मरण किया गया, वहींपर वे आ उपस्थित हुए—इसमें जरा-सा भी सन्देह करनेकी गुंजायश नहीं। और सन्देह करके कोई उनके मार्गका पथिक भी तो नहीं बन सकता। तर्क और प्रमाण, शंका और सन्देहको लेकर उन्हें नहीं पाया जा सकता। उनके मार्गपर तो

श्रद्धा, विश्वास और धैर्य लेकर ही अग्रसर हुआ जा सकता है। सच्चे भावसे उन्हें पुकारना पड़ता है, तभी और केवल तभी ही सफलताका सुनहला मुख दीख पड़ता है, अन्यथा नहीं। वास्तवमें—

राम राम सब कोई कहै, ठग ठाकुर औ चोर।
बिना भाव रीझै नहीं, नटवर नन्दकिशोर॥

शबरी ज्ञानशून्या थी—पर इससे क्या? उसके हृदयमें प्रेमका दरिया तो उमड़ रहा था। उसके हृदयमें आराध्यदेवके लिये सर्वोत्तम आसन तो बिछा हुआ था। प्रेम-मदिराका अलबेला प्याला तो उसने जी भरकर गलेके नीचे उतार लिया था। उसमें वह रात-दिन मस्त तो बनी घूमा करती थी—फिर वे प्रेमके हाथोंकी कठपुतली, मनमोहन प्रेमस्वरूप उसकी ओर आकृष्ट न होते यह कैसे सम्भव था? प्रेमीकी ऐसी अनवरत साधना देखकर वे कबतक उससे दूर रह सकते थे? शबरीके आँसू पोंछकर उन्होंने कहा—'पगली! तू रोती क्यों है? तू क्या यह नहीं जानती कि मैं तो—***'मानउँ एक भगति कर नाता!'*** मैं तो और कुछ मानता नहीं; पापी-से-पापी, दीन-से-दीन व्यक्तिको भी—यदि वह सच्चे हृदयसे मुझसे प्रेम करता है तो मैं उसे हृदयसे चिपटा लेनेको सदैव व्याकुल रहा करता हूँ। अपने प्रेमियोंको मैं तो प्राणोंसे भी अधिक प्रेम करता हूँ—फिर तू तो ठहरी मेरी सच्ची प्रेमिन। तुझमें तो वे सारे लक्षण मौजूद हैं, जो एक प्रेमी भक्तमें होने चाहिये। तुझे यों व्याकुल होनेकी आवश्यकता नहीं। उठ, बहुत रो लिया। अब मेरे लिये कुछ खानेको तो ले आ। देख, मैं कबसे तुझसे खानेके लिये लिये कुछ माँग रहा हूँ। तू तो रोनेके मारे मेरी भूखकी ओर ध्यान ही नहीं दे रही है। ला, ला, देर न कर। देखूँ, तूने मेरे लिये खिलानेका क्या प्रबन्ध किया है?'

हर्षविह्वला पगली उठी और बड़े प्रेमसे अपनी डलिया उठा लायी। और फिर क्या था—

प्रेमिनका ऐसा प्रेम देख रघुनाथजी हाथ बढ़ाते हैं।
चक्खे हुए बेरोंको बेर बेर खुश होकर भोग लगाते हैं॥

साथ ही कहते भी जाते हैं कि—

ला बेर बेर क्यों बेर करे, अमृतसे बढ़कर बेर हैं ये।
पक्के मीठे औ ताकतवर, अति सुन्दर मीठे बेर हैं ये॥

क्यों न हो, प्रेम-सुधाकी अनुपम मिठास जो इनमें भरी हुई है!

लक्ष्मणको भी देते हुए वे कहने लगते हैं—

हे लक्ष्मण! तुमने खाये नहीं, देखो तो कैसे मीठे हैं।
पातालसे लेकर स्वर्ग तलक जो हैं सो इससे फीके हैं॥

और लो—

तुमने भी बहुत खिलाये हैं, पर—उनमें यह आनन्द नहीं।
सीताका भी परसा भोजन है इतना मुझे पसन्द नहीं॥

भला इस प्रेमवत्सलताका भी कुछ ठिकाना है? आज मर्यादापुरुषोत्तम प्रेमके आगे जाति, कुल, वर्ण, जूठा-सखरा—सब कुछ भुला बैठे हैं। उनका यह व्यवहार हमें पुकार-पुकारकर समझा रहा है कि 'भैया, प्रभु तो प्रेमके वशमें हैं।' तब भी यदि हम उनके पावन पदारविन्दोंके चंचरीक न बनें, उनकी प्रेम-मदिराके दीवाने न बनें तो हम-सा अभागा और कौन होगा?

हे परम पावन प्रियतम! हमें अपने इस निराले पथका पथिक न बनाओगे क्या?

पुण्यप्रदर्शनका फल : बालि-प्रसंग

(पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)

समाजमें अनेक लोग ऐसे होते हैं, जो दान, पुण्य आदि तो बहुत करते हैं; किंतु अपने यश एवं प्रशंसाहेतु पुण्यका प्रदर्शन उससे भी कहीं अधिक करते हैं। कुछ लोग लोक-परलोक, स्वर्ग-नरक या ईश्वरको किसने देखा है—ऐसे सर्वथा नास्तिकतापूर्ण विचार अपनेमें रखकर केवल मान-प्रतिष्ठा, भोग-ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये पाखण्डपूर्वक दान-पुण्य, गरीबोंकी सेवा, साधु-ब्राह्मण-सेवा आदि करते हैं। यह भी एकमात्र अपराध कमाना है। यदि ये दान-पुण्यके कार्य नि:स्वार्थ, केवल सेवाभावसे किये होते तो इनका फल उनकी कल्पनासे भी कहीं अधिक मिलता, किंतु दुर्भाग्यवश उन्हें असली हीरे-मोतीके स्थानपर केवल काँचके टुकड़े—वृत्ति ही प्राप्त होती है (अर्थात् केवल प्रशंसा)।

इस प्रकारकी वृत्तिके मूलमें उनका अभिमान ही बढ़ता है। अभिमानी व्यक्ति बड़ा प्रदर्शन-प्रिय होता है।

ऐसा व्यक्ति अच्छा कार्य भी करता है तो उसके पीछे उसका उद्देश्य केवल प्रदर्शन करना ही होता है। मानसमें तुलसीदासजीने एक ऐसे ही पात्रका वर्णन किया है। वह है बालि। बालि पुण्यकी इसी प्रदर्शनवृत्तिसे ग्रस्त है।

वर्णन आता है कि सुग्रीव बालिके डरसे ऋष्यमूक पर्वतपर हनुमान्‌जीके साथ रहते हैं। बालि शापके कारण इस पर्वतपर नहीं आ सकता। बालि यद्यपि अत्यन्त बलशाली है, पर उसकी वृत्ति ऐसी है कि उसकी यह विशेषता उसके लिये अभिशाप बन जाती है। बालिको मुनियोंने जो शाप दिया है, उसके पीछे जो कारण है वह बड़ा सांकेतिक है।

कथा आती है कि एक दुन्दुभि नामका राक्षस था। उसने बहुत आतंक मचाया हुआ था। पापकर्मोंमें लीन रहता था। साधु-सन्तोंके आश्रमोंको, उनके यज्ञोंको अपवित्र कर देता था। एक दिन वह आधी रातको बालिके महलके सामने आया एवं उसने उसे युद्धके लिये ललकारा। उसने सोचा कि बालि सोया होगा तथा युद्धहेतु बाहर नहीं आयेगा और प्रात: वह घोषित कर देगा कि उसने बालिपर विजय प्राप्त कर ली है, किंतु उसका गणित उलटा हो गया। बालिने उससे युद्ध किया। बालिने जब उसपर वार किया तो वह मर ही गया। बालिने सोचा कि इस राक्षसको मारनेका यश तो मुझे मिलना ही चाहिये, पर वह तो मर ही गया, तब यश मिले कैसे? उसने राक्षसके शवको उठाकर ऋष्यमूक पर्वतपर फेंक दिया जिसपर ऋषि-मुनि साधना-तपस्या किया करते थे। शवके रक्त-मज्जा एवं हड्डियोंके अंश उन आश्रमोंमें बिखर गये, जिससे वे सब आश्रम अपवित्र हो गये। उसका उद्देश्य था कि लोग जानें तो सही कि उसका वध बालिने किया है। यह दम्भ और दिखानेकी वृत्ति बालिके जीवनसे कभी गयी नहीं। मनोभाव यह है कि मैंने मार तो दिया, पर यदि किसीने देखा नहीं तो मारनेका क्या लाभ! लोग देखें तो सही कि हमने क्या किया है। यही दिखावेकी वृत्ति है, जो बालिको कभी छोड़ती नहीं। ऋषिगण बिगड़कर कह उठे—जिस मूर्खने इस दैत्यको मारा है, उसे वरदान नहीं शाप मिलेगा! यह बालिके जीवनकी कैसी विडम्बना है! कहाँ तो उसे राक्षसको मारनेके कारण वरदान मिलना था और कहाँ दम्भमें फँसकर वह शापका भागी बनता है। इसका तात्पर्य यह है कि जब हमारा पुण्य प्रदर्शनके लिये होता है एवं केवल लोकसम्मान पानेकी दृष्टिसे हम पापको पराजित करते हैं, तो फल यह होता है कि हमारे जीवनके सद्‌गुण भक्तिकी प्राप्तिमें सहायक नहीं बनते।

बालि यदि अभिमानप्रेरित प्रदर्शनके स्थानपर सचमुच मुनियोंकी सेवाकी दृष्टिसे दुदुम्भिका वध करता, तो शापके स्थानपर मुनियोंसे आशीर्वाद प्राप्त करता और अपने पराक्रमको सार्थककर धन्य हो जाता।

बालिमें इतना अतुलनीय पराक्रम था कि उसने

विश्वविजेता रावणको भी परास्त कर दिया, पर बालिने अपने इस पराक्रमके प्रदर्शनके लिये रावणको मारनेके स्थानपर अपनी बगलमें दबा लिया और सबको दिखाता-फिरता रहा कि मैं रावण-विजेता हूँ। बालिकी इस वृत्तिके मूलरूपमें उसका पुण्य-प्रदर्शनका अभिमान ही कारण है।

यदि बालि रावणको पराजितकर प्रमाण-पत्रके रूपमें काँखमें दबाकर घूमनेके स्थानपर उसका वध कर देता तो रावणके अत्याचारसे समाजको मुक्त कर देता। सचमुच, यह एक महान् कार्य होता, पर बालिका अहं उसे वैसा नहीं करने देता। यही पुण्य-प्रदर्शनका अभिमान उसे विनाशकी दिशामें ले जाता है। आगे चलकर भगवान् रामसे उसका जो संवाद होता है, उसमें यही बात आती है।

भगवान् रामका बाण लगनेसे बालि जब भूमिपर गिर पड़ा, तो प्रभु उसके पास आ गये। भगवान्को सामने पाकर बालिने उनसे पूछ दिया—'आपने मेरा वध क्यों किया?' भगवान् रामने बालिके अभिमानको ही इसका कारण बताते हुए यही कहा कि—

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना॥

(रा०च०मा० ४।९।९)

तुम्हारी पत्नीने तुम्हें कितना सुन्दर उपदेश दिया था, पर अभिमानके कारण तुमने उसपर ध्यान नहीं दिया। इसलिये तुममें पाप और अभिमान दोनों हैं और मेरे अवतार लेनेका उद्देश्य इन दोनोंको नष्ट करना है। इसलिये मैंने तुम्हारे ऊपर प्रहार किया है।

मानसके उत्तरकाण्डमें गोस्वामीजीने इस पुण्य-प्रदर्शनके अभिमानका मानसिक रोगोंकी श्रेणीमें वर्णन किया है। यह एक असाध्य रोग है, जिसका उपचार बड़ा जटिल है। अहंकारसे बचनेका एक सरल उपाय यह है कि जब हमारे जीवनमें सफलता एवं विजयके क्षण आयें तो उस सफलता तथा विजयको हम भगवान्की कृपाका प्रसाद ही मानें तथा भगवान्से प्रार्थना करें कि प्रभु! यह सफलता तथा विजय जो मिली है, यह आपकी कृपाका ही परिणाम है और आप इसे स्वीकार कीजिये। यदि इस प्रकारसे जो भोग लगानेके बाद प्रशंसाका प्रसाद लेगा, उसके जीवनमें पतनकी आशंका नहीं होगी तथा अहंकारके रोगसे वह सुरक्षित रहेगा।

हमारा अहंकार भगवान्की शरणागति करनेमें बाधक है। मनुष्यकी गहरीसे गहरी और पहली बीमारी अहंकार है। जहाँ अहंकार है, वहाँ दया झूठी है, जहाँ अहंकार है, वहाँ अहिंसा झूठी है, जहाँ अहंकार है, वहाँ शान्ति झूठी है और जहाँ अहंकार है, वहाँ कल्याण तथा मंगल, लोकहितकी बातें झूठी हैं, वहाँ यह सारी-की-सारी बातें केवल अहंकारके आभूषण हैं, सिवा इसके और कुछ भी नहीं है।

उपाय—जबतक हमारे अहंकारका नाश नहीं होगा, भगवान् हमें अपनी शरणमें नहीं लेंगे। अब प्रश्न यह है कि हमारा अहंकार कैसे छूटे? संत लोग ऐसा बताते हैं कि हम अपने साधनोंके द्वारा अहंकारको नहीं छोड़ सकते। यह साधनसे साध्य नहीं है बल्कि भगवान्की कृपासे साध्य है। हमें भगवान्की कृपा प्राप्त करनी होगी। हमें भगवान्की कृपा पानेके लिये उनका कृपापात्र बनना होगा। कृपापात्र बननेके लिये हमें प्रभुका नित्य निरन्तर सुमिरण करना होगा। स्वामी रामसुखदासजीने सरल उपाय बताया है कि थोड़ी-थोड़ी देरमें हम भगवान्से प्रार्थना करें कि 'हे प्रभु! मैं आपको भूलूँ नहीं।' बार-बार नीचे लिखे भजनको गायें।

शरण में आये हैं हम तुम्हारी, दया करो हे दयालु भगवन्।
मिटा दो मेरे अहंकार को, दया करो हे दयालु भगवन्॥
न हम में बल है न हम में शक्ति, न हम में साधन न हम में भक्ति।
तेरे दर के हैं हम भिखारी, दया करो हे दयालु भगवन्।
मिटा दो मेरे अहंकार को, दया करो हे दयालु भगवन्॥

इस प्रकार जब हम भगवान्से बार-बार प्रार्थना करेंगे तो भगवान् अवश्य ही कृपा करके हमारे अहंकारका विनाश करेंगे।

[प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता]

चित्त-शुद्धि

(तत्त्वदर्शी महात्मा श्रीतैलंग स्वामीजी महाराज)

धर्मका सार चित्त-शुद्धि है। जो धर्मके अनुरागी अथवा सनातन-धर्मके यथार्थ मर्मका अन्वेषण करनेके इच्छुक हैं, उन्हें इस तत्त्वके प्रति विशेष ध्यान रखना चाहिये। जिसकी चित्त-शुद्धि नहीं, उसका कोई धर्म नहीं। चित्त-शुद्धि केवल सनातन-धर्मका ही सार है, सो बात नहीं है। यह सभी धर्मोंका तत्त्व है। जिसका चित्त शुद्ध है, वही श्रेष्ठ हिन्दू, श्रेष्ठ मुसलमान, श्रेष्ठ ईसाई आदि है। जिसकी चित्त-शुद्धि नहीं, वह किसी भी धर्मके अनुयायियोंमें धार्मिक कहा जाकर गण्य नहीं हो सकता। चित्त-शुद्धि ही धर्मका मर्म है। यह अखण्ड दार्शनिक सिद्धान्त है।

चित्त-शुद्धि क्या है—चित्त-शुद्धिका पहला लक्षण इन्द्रियोंका संयम है। इन्द्रिय-संयम—इस वाक्यद्वारा यह नहीं समझना चाहिये कि सब इन्द्रियोंका एक बार ही उच्छेद अथवा ध्वंस करना होगा। इन्द्रियोंको संयत करनेका अभिप्राय इन्द्रियोंको अपने वशमें करना है, स्वयं उनके वशमें होना नहीं। इसीका नाम इन्द्रिय-संयम है। भोजन-लोलुपता एक प्रकारसे इन्द्रिय-प्रवृत्ति है, किंतु इन्द्रियोंको संयत करनेमें यह नहीं समझना चाहिये कि भोजनका त्याग कर दिया जाय; केवल वायु-भक्षण किया जाय अथवा गला-सड़ा दूषित आहार करके दिन व्यतीत कर दिया जाय।

शरीर एवं स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये जिस परिमाणमें और जिस प्रकारके आहारकी आवश्यकता है, वही करना चाहिये। इससे इन्द्रिय-संयममें कोई बाधा नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त उत्तम आहारादि अविधेय नहीं है; यदि उसमें स्पृहा—इच्छा न रहे। मोटी बात यह है कि इन्द्रियोंकी आसक्तिका अभाव ही इन्द्रिय-संयम है, जो बहुत कुछ आहारादिपर निर्भर है।

आत्मरक्षार्थ अथवा धर्मरक्षार्थ अर्थात् ईश्वरीय नियम-रक्षार्थ जितनी इन्द्रियोंकी चरितार्थता आवश्यक है, उसके अतिरिक्त जो इन्द्रिय-परितृप्तिकी अभिलाषा करता है, इन्द्रिय-संयम उसके वशकी बात नहीं। जो इन्द्रिय-परितृप्तिमें सुखानुभव नहीं करता, आकांक्षा नहीं रखता, केवल धर्मरक्षाकी भावना रखता है, वह संयतेन्द्रिय है, यह समझना चाहिये।

ऐसे अनेक मनुष्य हैं, जो इन्द्रिय-परितृप्तिसे विमुख रहनेपर भी अपने मनको शुद्ध नहीं कर पाते। वे लोकलज्जासे अथवा लोगोंमें प्रसिद्धिके लिये किंवा ऐहिक उन्नतिके लिये अथवा धर्मके भानसे पीड़ित होकर जितेन्द्रियकी तरह कार्य करते हैं, किंतु उनके भीतर इन्द्रियोंकी ज्वाला धधकती रहती है, जन्मसे मृत्युपर्यन्त वे स्खलितपर्द न होकर भी (अपानवायुको रोक रखनेपर भी) इन्द्रिय-संयमसे बहुत कुछ दूर ही रहते हैं। जो बार-बार इन्द्रिय-तृप्तिके लिये उद्योगी एवं कृतकार्य हैं, उनसे ऐसे धर्मात्माओंका भेद बहुत ही थोड़ा है। दोनोंको ही समानरूपसे नरककी अग्निमें दग्ध होना पड़ता है। इन्द्रिय-परितृप्ति करो अथवा न करो, जब भ्रमसे भी इन्द्रिय-परितृप्तिकी बात मनमें न आये, आत्मरक्षार्थ अथवा धर्मरक्षार्थ इन्द्रियोंको चरितार्थ करना

पड़े तो भी उसको दु:खके अतिरिक्त सुखका विषय न माना जाय। उसी स्थितिमें यह समझा जायगा कि इन्द्रिय-संयम हुआ है। इसके अभावमें योगाभ्यास, तपस्या, उपासना आदि कठोर कार्य सभी वृथा हैं।

केवल योग अथवा तपस्या करनेसे इन्द्रिय-संयमरूप कार्य पूरा नहीं होता। कार्यक्षेत्रमें—संसार-धर्ममें ही इन्द्रिय-संयम हो सकता है। प्रतिदिन उनका निवास स्वीकार करनेवाला इन्द्रिय-परितृप्तिके उपादानोंसे दूर जाकर—सब विषयोंसे निर्लिप्त हो अपने मनमें यह भले ही समझ ले कि मैं इन्द्रियोंको जीतनेवाला हो गया हूँ, किंतु जैसे मिट्टीका पात्र अग्निमें पका नहीं तो वह छूते ही टूट जाता है, वैसे ही इस प्रकारका इन्द्रिय-संयम भी लोभके स्पर्शमात्रसे ही ठहर नहीं सकता। इसके प्रमाण बहुत हैं। स्वर्गसे एक अप्सरा आयी और उसी क्षण ऋषिराजका योग भंग हो गया, अधिक धैर्य धारण करनेमें असमर्थ होकर अन्तमें वे इन्द्रिय-परितृप्ति करके ही शान्त हुए।

जिस देशमें जो वस्तु नहीं मिलती, उस देशके लोग तो उस वस्तुको खाते नहीं अथवा उसे व्यवहारमें नहीं लाते, परंतु यदि वही वस्तु कभी मिल जाय और उसे बड़े आग्रहके साथ खायें एवं व्यवहारमें लायें तो इसको उस वस्तुका त्याग नहीं कहा जा सकता। जो प्रतिदिन इन्द्रिय-चरितार्थ करनेके उपयोगी उपादानोंके संसर्गमें आये हैं। उनसे युद्धकर कभी जयी और कभी विजित हुए हैं। वे ही शेषमें इन्द्रिय-जय करनेमें सफल हुए हैं। पराशर अथवा विश्वामित्र ऋषि इन्द्रिय-जय नहीं कर सके। इन्द्रिय-जय करनेमें समर्थ हुए थे—चिरस्मरणीय भीष्म और श्रीराम-भ्राता लक्ष्मण।

इन्द्रिय-संयम अपेक्षाकृत तुच्छ बात है। उसकी अपेक्षा चित्त-शुद्धिका बड़ा महत्त्व है। बहुतोंकी इन्द्रियाँ संयत हैं, किंतु दूसरे कारणसे उनका चित्त शुद्ध नहीं हुआ है। 'इन्द्रिय-सुख-भोग नहीं करूँगा। किंतु मैं अच्छा रहूँ, मुझे सब प्यार करें'—इस प्रकारकी वासना उनके मनमें बड़ी प्रबल है। मेरे पास धन हो, मेरा मान हो, मेरा यश बढ़े, मैं बड़ा बनूँ, मेरा सौभाग्य हो, मुझे सब धार्मिक और महात्मा मानकर आदर करें—वे सर्वदा ही यह कामना करते हैं। जिससे यह वासना पूरी हो, चिरकाल इसी चेष्टामें—इसी उद्योगमें व्यस्त रहते हैं। इसके लिये वे न करें ऐसा कार्य नहीं, और इससे भिन्न ऐसा विषय नहीं जिसमें मन न लगाते हों। जो इन्द्रियासक्त लोग हैं, उनकी अपेक्षा भी ये निकृष्ट हैं। इनके लिये धर्म कुछ नहीं, कर्म कुछ नहीं, ज्ञान कुछ नहीं और भक्ति कुछ नहीं। ईश्वरको माननेपर भी ईश्वर है या नहीं, इसका उन्हें आत्मविश्वास नहीं। इन्द्रिय-आसक्तिकी अपेक्षा यह स्वार्थपरता चित्त-शुद्धिमें बड़ी बाधक होती है। परार्थपरताके ग्रहण और वासनाके त्यागके बिना चित्त-शुद्धि नहीं होती। जब अपने लिये सुखान्वेषण करोगे, उसी प्रकार दूसरेके लिये भी सुख ढूँढ़ोगे,* जब अपने-आपसे दूसरेको भिन्न न समझोगे, जब अपनोंकी अपेक्षा दूसरोंको अपना मानोगे, जब क्रमशः अपने-आपको भूलकर दूसरेको सर्वस्व समझोगे, जब दूसरेमें अपने आत्माको निमज्जित रख सकोगे, जब तुम अपने आत्माको विश्वव्यापी विश्वमय अनुभव करोगे, तभी यह समझना चाहिये कि चित्त-शुद्धि हुई है। यह बिना हुए कौपीन धारणकर संसार-परित्यागपूर्वक भिक्षा-वृत्तिके अवलम्बनद्वारा घर-घरमें अलख-जगनिया 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने या हरिनामकी ध्वनि करते हुए घूमनेसे चित्तकी शुद्धि नहीं होगी।

पक्षान्तरमें राज-सिंहासनपर बहुमूल्य रत्न धारणकर बैठनेवाला जो राजा एक भिक्षुक प्रजाजनके दु:खको अपने दु:खकी तरह समझेगा, नि:सन्देह उसकी चित्त-शुद्धि हुई है। जो सब शुद्धियोंका स्रष्टा है, जो शुद्धिमय है, जिसकी कृपापर शुद्धि अवलम्बित है, उसमें प्रगाढ़ भक्ति होना चित्त-शुद्धिका प्रधान लक्षण है।

भक्ति ही चित्त-शुद्धिका और धर्मका मूल है। चित्त-शुद्धिका पहला लक्षण हृदयमें शान्ति, दूसरा लक्षण दूसरेको प्यार करना और तीसरा लक्षण ईश्वरमें

* आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन। सुखं वा यदि वा दु:खं स योगी परमो मत:॥ (गीता ६। ३२)

भक्ति है। जिन व्यक्तियोंके लिये इस प्रकार शान्ति, प्रीति और भक्तिका योग होता है, उनके हृदयमें कोई कामना नहीं रहती। यहाँतक कि उन्हें सालोक्य, सामीप्य सायुज्य, सारूप्य आदि मुक्तियाँ देनेकी इच्छा प्रकट की जाय तो भी वे भगवत्सेवाको छोड़कर और कुछ नहीं चाहेंगे। धनकी आशा छोड़, श्रद्धायुक्त एवं निष्काम हो हिंसा-त्यागपूर्वक पूजा-जपद्वारा उसके स्वरूपका दर्शन, स्पर्श, स्तवन, वन्दन, सब प्राणियोंमें उसीका भाव-चिन्तन करना, धैर्य-वैराग्य धारण करना, महान् व्यक्तियोंका सम्मान करना, दीनोंके प्रति दया एवं आत्म-तुल्य व्यक्तियोंके साथ मैत्री, अन्तरिन्द्रियोंका दमन, बाह्येन्द्रियोंका निग्रह, आत्म-विषयक-श्रवण, भगवन्नाम-संकीर्तन, सरलता, सत्संग, निरहंकारिता-प्रदर्शन आदि गुणोंद्वारा चित्त-शुद्धि होती है और ऐसे सदाचारी लोग बिना प्रयत्नके उसे प्राप्तकर जिस प्रकार गन्ध वायुयोगद्वारा अपने स्थानसे आकर घ्राणका आश्रय लेती है, उसी प्रकार भक्ति-योगसे युक्त चित्त बिना यत्नके परमात्माको आत्मसात् कर लेता है।[१]

वह सब भूतोंका आत्मस्वरूप होकर सब प्राणियोंमें अवस्थित है।[२] मनुष्य जबतक सब प्राणियोंमें अवस्थित उस परमात्माको अपने हृदयमें न पहचान सके, तबतक अपने कर्ममें रत रहकर वह उपासना अथवा जप करता रहे। जो व्यक्ति अपनेमें और दूसरेमें थोड़ा भी भेद देखता है, जिसे दूसरेका दु:ख अपने दु:खके समान अनुभव न हो, उसे ईश्वर और ब्रह्ममय जगत् किस प्रकार है, इसका ज्ञान नहीं हो सकता। ईश्वर सर्वव्यापी है। वह सब स्थानोंमें—वन, ग्राम, नगर, जल, स्थल, शून्य, पत्थर एवं सकल प्राणियोंमें—आत्माके रूपमें अवस्थान करता है। केवल मुँहसे यह कह देनेसे कि ईश्वर सर्वव्यापी है, कोई फल नहीं हो सकता। ईश्वर सर्वव्यापी है, यह स्वीकार कर लेनेपर ही यह मानना होगा कि जगत् ब्रह्ममय है। जो ज्ञानके द्वारा यह कहते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापी है, ईश्वर सर्वान्तर्यामी है, वे अच्छी तरह समझ सकते हैं कि ब्रह्ममय जगत् किस प्रकार है। ईश्वर क्या पदार्थ है, उसका आकार-प्रकार कैसा है और क्या करनेसे अथवा किस मार्गका अवलम्बन करनेसे उसको प्राप्त किया जाय—आरम्भमें यह बात न धारणामें आ सकती है और न दृष्टिपथमें। यह केवल समझ लेना होगा। समझने या जान लेनेका प्रयत्न करनेसे ही हृदयंगम होकर पहले कारण प्रत्यक्ष होगा और बादमें दर्शन। वह दिन-रात अपने बहुत समीप, बिलकुल सामने ही है। हम अन्तर्दृष्टिद्वारा देखना नहीं चाहते, इसीलिये उसे देख नहीं सकते। चित्त-शुद्धि उसको प्राप्त करनेका प्रधान साधन है।

चेतश्चञ्चलतां विहाय पुरतः संधाय कोटिद्वयं तत्रैकत्र निधेहि सर्वविषयानन्यत्र च श्रीपतिम्।
विश्रान्तिर्हितमप्यहो क्व नु तयोर्मध्ये तदालोच्यतां युक्त्या वानुभवेन यत्र परमानन्दश्च तत्सेव्यताम्॥

अरे चित्त! चंचलताको छोड़कर सामने तराजूके दोनों पलड़ोंमेंसे एकमें सब विषयोंको और दूसरेमें भगवान् श्रीपतिको रख और इसका विचारकर कि दोनोंके बीचमें विश्राम और हित किसमें हैं? फिर युक्ति और अनुभवसे जहाँ परमानन्द मिले, उसीका सेवन कर।

---

१. (क) न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥ (श्रीमद्भा० ११।१४।१४)

(ख) न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे।—श्रीशंकराचार्य:

(ग) न मुक्तिर्द्वारि चतुर्विधापि किमियं दास्याय न मे लायते।—बोधसार:

(घ) अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादरि भगति लुभाने॥
जनम जनम रति रामपद यह बरदानु न आन॥ (श्रीतुलसीकृत रामायण)

२. यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥ (ईशावास्योपनिषद् ६)

कहानी—

कहानीका असर

(मास्टर श्रीपारसचन्दजी)

कई साल पहलेकी बात है। मि० सप्रू, इटावामें डिप्टी कलेक्टर बनकर आये। एक दिन एक विचित्र घटना घटी। सप्रूजी भोजन करके पलंगपर लेटे हुए थे। रातके दस बजेका समय था। मनोहर नाई चरणसेवा कर रहा था।

सप्रू—मनोहर! कोई कहानी सुनाओ!

मनोहर—आपको मैं क्या सुना सकता हूँ? आपने हजारों किताबें पढ़ी हैं और लाखों कहानियाँ सुनी हैं। आप रोज जो मुकदमे करते हैं, वे सब कहानियाँ ही तो हैं। आप कुछ कहें और मैं सुनूँ!

सप्रू—नहीं मनोहर! तुम्हीं कोई कहानी कहो।

मनोहर—आप नहीं मानते तो सुनिये। बीच-बीचमें 'हूँ' जरूर कहते जायँ। नहीं तो आप सो जायँ और मैं बकता रहूँ।

सप्रू—अच्छा!

मनोहर—अरबमें एक बादशाह था। एक रातको दासीने छतपर बादशाहका पलंग बिछाया। गरमीके दिन थे। छतपर केवड़ेका छिड़काव किया गया था।

सप्रू—हूँ!

मनोहर—सोनेका पलंग था, रेशमकी निवारसे भरा गया था, कालीन बिछा था, उसपर गद्दा बिछा था, फिर एक कालीन बिछा था, उसपर सफेदी बिछी थी। आमने-सामने, अगल-बगल चार तकिये रखे थे और फूलोंसे सेज सजाकर, दासी उस पलंगकी शोभा एकटक देख रही थी।

सप्रू—हूँ!

मनोहर—दासीके मनमें विचार आया कि पाँच मिनट इस पलंगपर लेट लेना चाहिये। मैं भी तो देखूँ कि कैसा लगता है! मन होता है शैतान! दासी, बादशाहके पलंगपर लेट गयी।

सप्रू—अच्छा! फिर?

मनोहर—दासी थी बेचारी दिनभरकी थकी और माँदी! ऊपरसे लगी ठण्डी हवा और नीचेसे उठी फूलोंकी गमक! तीन मिनट भी नहीं बीते; दासी टपसे सो गयी!

सप्रू—अरे! फिर क्या हुआ! शामत आयी होगी?

मनोहर—एक घण्टेके बाद भोजन करके बादशाह सलामत आराम करने आये। पूरनमासीकी चाँदनी थी ही, बादशाहने तुरंत जान लिया कि पलंगपर दासी सो रही है।

सप्रू—गजब हो गया!

मनोहर—बादशाहने दासीको जगाया। जमीनपर खड़ी होकर, मारे डरके, दासी थर-थर काँपने लगी। हाथ जोड़कर चरण पकड़ लिये और फूट-फूटकर रोने लगी। बादशाहने कहा कि इस कसूरकी बिलकुल माफी नहीं हो सकती। हलकी सजा दी जायगी।

सप्रू—अच्छा! फिर?

मनोहर—बादशाहने बेगम साहेबाको बुलाया और सब माजरा कह सुनाया। इसके बाद बादशाहने बेगमसे कहा कि आप ही इस दासीकी सजा तजबीज करें; क्योंकि इसने आपका ही अपराधविशेष किया है।

सप्रू—ठीक! फिर?

मनोहर—बेगम साहेबाने कहा कि इसने साठ मिनट पलंगपर व्यतीत किये हैं, इसलिये साठ बेंतकी सजा दी जाती है।

सप्रू—बहुत सख्त सजा दे दी!

मनोहर—रुतबा पा जानेपर आदमी कसाई हो जाता है!

सप्रू—हाँ, हूँ, आगे चलो!

मनोहर—सजा सुनकर बादशाहके भी होश उड़ गये। बादशाहने सोचा कि अगर किसी आदमीने बेंत लगाये तो यह साफ मर जायगी।

सप्रू—हूँ!

मनोहर—तबतक बेगम साहेबाने खुद ही कहा कि बेंत मैं ही लगाऊँगी। खूँटीपरसे चमड़ेका बेंत उठाकर बेगम साहेबाने चार-पाँच हाथ करारे जमा

दिये। बेचारी दासी रोती हुई गिर पड़ी। उसके बाद बेगम साहेबा थक गयीं। औरतकी जात मुलायम होती ही है!

सप्रू—हूँ!

मनोहर—बादशाह एक-दो-तीन-चार-पाँच कहकर गिनती गिनने लगे। तीस बेंततक दासी जार-जार रोती रही। परंतु, इसके बाद दासीकी मति पलट गयी। तीससे साठतक दासी खूब हँसती रही।

सप्रू—सो क्यों?

मनोहर—धीरज रखिये। सब बातें आप-ही-आप खुलती जायँगी।

सप्रू—अच्छा, हाँ!

मनोहर—सजा समाप्त होनेपर बादशाहने दासीसे पूछा कि तू पहले रोयी क्यों और पीछे हँसी क्यों? दासीने कहा कि चोटके कारण रोयी थी। परंतु, जब यह समझमें आया कि मैंने एक घण्टा पलंगपर बिताया तब तो साठ बेंत लगे और बादशाह सलामत रातभर सोते हैं सो इनकी न मालूम क्या दशा होगी! पलंगकी सजासे बेगम साहेबा भी न बचेंगी। आप दोनोंपर अनगिनती बेंत पड़ेंगे। अतः यह सोचकर मैं हँसी कि सजा देनेवालोंको अपनी सजाकी खबर ही नहीं है। जिस तरहसे पलंगपर मुझे सोता देख आप क्रोधित हुए, उसी तरह आपको पलंगपर सोता देख, खुदा कुपित होता है। मेरे हँसनेका यही कारण है। इतना सुनते ही बादशाहकी बुद्धि बदल गयी। बादशाहने ताज फेंक दिया, इमामा फेंक दिया, जामा फेंक दिया और जूते फेंककर फकीरी कफनी पहन ली। रामचन्द्रजी दिनको वनकी ओर चले थे, बादशाह ठीक आधी रातको वनगामी हो गया।

सप्रू—वाह! वाह! The duty is the beauty.

मनोहर—अंग्रेजीमें क्या मुझे गाली देने लगे?

सप्रू—नहीं, मनोहर! तुमने बहुत अच्छा किस्सा कहा। लेकिन अब हमको भी इस पलंगसे उतरना चाहिये।

Duty is beauty इतना कहकर वह पलंगपरसे उतर पड़े और पृथ्वीपर कम्बल बिछाकर लेट गये।

× × ×

शहरभरमें खबर फैल गयी कि फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट मिस्टर सप्रू ५५०/- मासिकपर लात मारकर फक़ीर हो गये! बंगलेके द्वारपर एक इमलीके नीचे, एक कम्बलपर, डिप्टी कलेक्टर, फक़ीरी भेषमें बैठे हैं।

बात-की-बातमें कलेक्टर साहब, सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस, जिलेके शेष तीन डिप्टी कलेक्टर और कोतवाल साहब घटनास्थलपर जा पहुँचे।

कलेक्टर—वेल मिस्टर सप्रू! टुमको क्या हो गया? टुम कलेक्टरीके वास्ते नामजद हो गया है। टुमने यह इसटीपा क्यों भेजा? अम टुमारा इसटीपा मंजूर करने नहीं माँगटा!

सप्रू—अभीतक सरकारकी नौकरी की, अब मालिककी नौकरी करूँगा।

कलेक्टर—पिकीरी करेगा पिकीरी? चौबीस घण्टेमें पाँच घण्टा सरकारी काम करो और बाकी वक्तमें पिकीरी करो। टुम बी राम राम करना—अम बी राम राम करेगा।

सप्रू—सज़ा देनेवाले नहीं जानते हैं कि उनके लिये किस सज़ाकी तजबीज हो रही है। इस बातने मेरा कलेजा काट दिया।

तहसील भरथनाके डिप्टी कलेक्टरने कलेक्टरसे कहा—'हज़ूर! 'ज्ञानकी बात कृपानकी धारा'—यानी तलवारकी तरह बात भी काट करती है। मेरा मँझला भाई जिला बाँदामें तहसीलदार था। एक रोज उसने देखा कि एक काले साँपने एक मेंढक पकड़ा और निगल गया। भाईने सोचा कि इसी तरह एक दिन मौतका साँप, मुझ मेंढकको गटक जायगा। उसी वक्त वह साधू हो गया। आजतक पता नहीं कि कहाँ है।'

कलेक्टर—मिस्टर सप्रू! अगर मेरी बातपर टुम नजर नहीं डालता तो न सही। वह देखो, टुमारी खूबसूरत और तालीमयाफ्ता बीबी, फाटकपर हाथ रखे रो रही है। टुमारा छोटा-सा बच्चा भी रो रहा है। टुमारे बिना टुमारे मेम साहबका क्या हाल होगा? टुमारा बच्चा कैसे तालीम पायेगा? बच्चेको पढ़ा-लिखा दो, तब पिकीर होना। तब हम बी पिकीर होगा।

सप्रू—नहीं हजूर! भूखी-प्यासी, थकी-माँदी

पबलिकका पैसा, वेतनके रूपमें लेकर मैंने जो पलंग-बाज़ी की है, उसकी सजा मुझे जरूर मिलेगी। अब मैं किसी दूसरेका इंसाफ नहीं करूँगा—खुद अपना इंसाफ करूँगा। जो अपना इंसाफ नहीं करता, वह दूसरोंका क्या इंसाफ करेगा?

सबने समझाया—पर सब व्यर्थ। लाचार होकर कलेक्टर साहबने इस्तीफा ले लिया। मनोहर नाई छाती पीट-पीटकर श्रीमती सप्रूके चरणोंमें लोट रहा था और कह रहा था कि 'मैंने नहीं जाना था कि कहानीमें भी असर होता है, नहीं तो यह कहानी नहीं कहता!'

× × ×

शहर इटावासे एक मील दक्षिणमें यमुनाजी हैं। एक पक्के घाटपर भूतपूर्व डिप्टी कलेक्टर श्रीयुत सप्रूजी बैठे हैं। फटी कमली है और एक मोटा सोटा है। यमुनामें खड़े होकर आप घाटपर सोटा खटखटाया करते थे और कभी-कभी कहते थे—

'लगा रहा खटका!'

'खटकेका खटका—खट पट करता रह!!'

'मत मिटना—खटखटा!!!'

दस बजेके करीब झोली लेकर आप भिक्षा लेने शहरमें जाते थे। पबलिक उनको पहचानती तो थी ही। सभी चाहते थे कि आज हमारे द्वारपर आयें। रोटी लेते थे—रोटियोंको लेकर उस झोलीको यमुनाजीमें डुबाते थे। तदनन्तर उस झोलीको एक इमलीकी शाखमें लटका देते थे। चार बजेतक झोली लटकती रहती थी। फिर कुछ आप खाते और बाकी बन्दरोंको खिला देते थे। फटी कमलीके सिवा कोई वस्त्र पास नहीं रखते थे। इस प्रकार इटावाके एक डिप्टी कलेक्टरने इटावामें ही बारह साल घोर तपस्या की।

× × ×

'खट-खट' करते रहनेसे पबलिक उनको 'खटखटा बाबा' कहने लगी। एक बार खटखटा बाबाने भण्डारा किया। घीकी कमी पड़ गयी। कड़ाही चढ़ी हुई थी—शहर दूर था। आपने एक चेलासे कहा कि दो कलसा यमुना-जल लाकर कड़ाहीमें छोड़ दो। वैसा ही किया गया। यमुनाका जल घी बन गया। पूड़ी सेंकी गयी।

एक बार कोई सिद्ध यमुनाजीकी बीच धारामें पद्मासन लगाये बैठा हुआ चला जा रहा था। खटखटा बाबाको देखकर कहा कि 'पानी पिला जाओ।' बाबाजी भी लोटामें जल लेकर, यमुनामें स्थलकी भाँति चलने लगे। पानी पीकर महात्माने कहा—'तुम भी सिद्ध हो गये!'

× × ×

खटखटा बाबाकी समाधिपर अब अनेक इमारतें बन गयी हैं। समाधिका मन्दिर और विद्यापीठकी इमारत दर्शनीय हैं। सहस्त्रों प्राचीन पुस्तकोंका अपूर्व संग्रह किया गया है। सालमें एक बार मेला लगता है। भारतके विद्वानों, योगियों और पण्डितोंको निमन्त्रण देकर बुलाया जाता है। खूब व्याख्यान होते हैं। खटखटा बाबाकी समाधि इटावाका तीर्थस्थान है। इटावा जिलेका बच्चा-बच्चा खटखटा बाबाके नामसे परिचित है।

विश्वका कल्याण हो

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥

(श्रीमद्भा० ५। १८। ९)

[हे नाथ!] विश्वका कल्याण हो, दुष्टोंकी बुद्धि शुद्ध हो, सब प्राणियोंमें परस्पर सद्भावना हो, सभी एक-दूसरेका हित-चिन्तन करें, हमारा मन शुभ-मार्गमें प्रवृत्त हो और हम सबकी बुद्धि (निरन्तर) निष्कामभावसे भगवान् श्रीहरिमें संलग्न (लगी) रहे।

संत-चरित—

श्रीसिद्धारूढ स्वामी

(ह० भ० प० श्रीलक्ष्मण रामचन्द्रजी पांगारकर)

श्रीसिद्धारूढ स्वामीका पहला नाम सिद्धाप्पा था। निजामराज्यके विद्रीकोट नामक गाँवमें संवत् १८९३ ई० में चैत्र शुक्ल नवमीको किसी श्रीमान् कुलमें इनका जन्म हुआ। इनके घर नित्य श्रीमद्भागवत और वेदान्तके प्रवचन हुआ करते थे। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी और बचपनसे ही वैराग्यके लक्षण इनमें दृष्टिगोचर होते थे। ये प्रवचन सुनते थे और फिर एकान्तमें जा बैठते थे, अन्य बालकोंकी तरह खेल-कूदमें इनका मन नहीं लगता था। भोजनके समय इन्हें ढूँढ़कर लाना पड़ता था। इस प्रकार चौदह वर्ष ये अपने घर माता-पिताके पास रहे फिर एक दिन घरसे जो निकले सो फिर कभी घर लौटे ही नहीं। एक लँगोटी ही पहने, कन्धेपर एक चीथड़ा डाले, अगृही होकर जंगलोंमें विचरने लगे। भूख लगनेपर किसी गाँवमें चले जाते और करतल भिक्षा पा लेते थे। रातको किसी मन्दिर या मसजिदमें या वृक्षके नीचे पड़े रहते। इस तरह विचरते हुए औंदिया नागनाथ पहुँचे। वहाँ इन्हें एक सिद्ध पुरुषका सत्संगलाभ हुआ, जिससे ये कृतार्थ हुए। एक तो तप्त भूमि, दूसरे उसमें बीज भी बोया हुआ था ही, अमृतोदकका सिंचन होते ही अंकुर निकल आये। यहाँसे फिर सिद्धाप्पा लौटे और घूमते-घामते बीजापुर पहुँचे। यहाँ भी उनकी चर्या जडान्धबधिरवत् ही रही। दिनमें करतल-भिक्षा करते, रातको किलेके श्रीनृसिंहदेवालयमें जाकर सो रहते। एक दिन रातके समय ये अपने शयनके स्थानको जा रहे थे। रास्तेमें किसी साहूकारकी बारात जा रही थी। बारातका एक मजूर अपना बोझ नीचे रखकर निकल भागा था। लोगोंने वह बोझ उठानेके लिये बेगारमें इन्हें पकड़ा। इन्होंने बोझ उठा लिया, बारातको ठिकाने पहुँचा दिया और बोझा उतारकर चल दिये। साहूकार उन्हें कुछ मजूरी या इनाम दिया चाहते थे, पर इनका पता नहीं चला।

इस चर्याके साथ कुछ वर्ष बीजापुरमें रहकर पीछे ये गोकर्ण पहुँचे। रास्तेमें दो-दो दिन बिना कुछ खाये रह जाते, चाहे धूप हो या ठण्ड कहीं भी पड़े रहते, कभी-कभी केवल दूध ही पी लेते और कभी केवल जलसे ही निर्वाह करते। कभी किसीसे अधिक बोलते नहीं थे। सदा स्वरूपानन्दमें निमग्न रहते और जो कुछ दृष्टिके सामने आता उसे देखते, कुछ भी खाकर पेटकी ज्वालाको शान्त करते, जो फटा-पुराना कपड़ा मिल जाता, उसीसे बदनको ढक लेते। गोकर्णमें कुछ दुष्टोंने इनके सर्वांगमें अमंगल पदार्थका लेप करके इन्हें गधेपर बैठाकर इनका जुलूस निकाला। पर इन्होंने चूँ नहीं की, न इन लोगोंकी इच्छाके विरुद्ध कोई जरा-सी भी हरकत ही की। इस सहिष्णुताकी बलिहारी है!

गोकर्णसे ये घूमते-घामते हुबली आये। हुबलीकी पुरानी बस्तीसे डेढ़ मीलपर आमकी एक बगिया है, उसमें एक छोटी-सी तलैया है। चरवाहोंके लड़के यहाँ खेला करते थे। इन लड़कोंके साथ ये भी खेलने लगते थे। यहीं किसी सिद्ध पुरुषकी एक कोठरीनुमा समाधि है। सिद्धाप्पा रातको इसी कोठरीमें सोया करते थे और

दिनमें गाँवसे भिक्षा माँग लाते या चरवाहोंके लड़कोंसे ही कुछ लेकर खा लेते थे।

एक बार भिक्षा माँगनेके लिये गाँवके किसी गृहस्थके यहाँ गये। वहाँ उस समय योगविषयक किसी ग्रन्थका निरूपण हो रहा था। ग्रन्थमें एक ऐसी पंक्ति निकली, जिसका अर्थ वक्ता-श्रोता किसीकी भी समझमें नहीं आ रहा था, इससे सब लोग चुप बैठे थे। सिद्धाप्पाको बोलनेकी स्फूर्ति हुई और उन्होंने खड़े-खड़े ही वह विषय सुबोध भाषामें समझा दिया। वक्ता-श्रोता अधिकारी थे। उन्होंने जाना कि ये कोई सिद्ध पुरुष हैं और सबने उनके चरणोंपर मस्तक रखा। मकानमालिकने तो उन्हें उस रातको अपने ही घर टिकाया और उनकी बड़ी खातिर की और बार-बार अपने ही यहाँ रह जानेका आग्रह करने लगे। सिद्धाप्पा चुप रहे और बिना किसीसे कुछ कहे रातों-रात वहाँसे निकल भागे। अब जो लोग उनकी वाणी यहाँ सुन चुके थे, उन्हें उनकी वाणीका चसका लग गया और वे नित्य उनके खेलनेके स्थानमें जाकर उनकी वाणी श्रवण करने लगे; इन्हें भी भाषणका स्फुरण होने लगा और ये खेल छोड़कर इन श्रद्धालु श्रोताओंके बीचमें बैठकर गूढ़ विषयोंका बड़ा हृदयग्राही निरूपण करने लगे। लोग आनन्दित होने लगे और इनकी भक्ति करने लगे। इनकी ब्रह्मनिष्ठा देखकर लोग इन्हें सिद्धारूढ कहने लगे। तभीसे ये सिद्धारूढ स्वामीके नामसे प्रसिद्ध हुए।

इनका रहन-सहन बहुत सादा, निस्पृह और प्रखर वैराग्यका नमूना था। इनका परिग्रह एक लँगोटी, एक धोती और शिरमें लपेटनेका दो हाथ कपड़ा, बस, इतना ही था। देहके विषयमें सदा उदासीन रहते थे, देहमें चाहे जैसी व्याधि या पीड़ा होती तो भी ये कभी ओषधिसेवन नहीं करते थे। अनशन ही इनका औषध था। इनका निरूपण अनुभव-युक्त, सरल और मुमुक्षुओंके हृदयोंको बेधनेवाला होता था। इनके शब्दोंमें कुछ ऐसी विलक्षण सामर्थ्य थी कि सुननेवाले तल्लीन हो जाते थे और सबकी शंकाओंका पूर्ण समाधान होता था।

महाराज मराठी, कानड़ी, तमिल, तेलगु, हिन्दी और अरबी भाषाएँ अच्छी तरहसे बोल सकते थे। उनके भाषणोंमें अद्वैतके सिवा और दूसरी बात ही नहीं आती थी। ब्राह्मण, लिङ्गायत, सुनार, पटेगार, मुसलमान—इन सभी जातियोंके स्त्री-पुरुष इनके पास जाते और इनकी भक्ति करते थे। इनकी वृत्तिमें ऐसी अलौकिक शान्ति थी कि दुष्ट-से-दुष्ट मनुष्य इनके समीप आकर शान्त हो जाता था। स्वयं सब विषयोंसे उदासीन रहते हुए भी समागत भक्तोंका स्वागत करनेमें कोई त्रुटि नहीं होने देते थे। लौकिक बातें इनके मुखसे प्रायः कभी नहीं सुनी गयीं। वे संस्कृत नहीं जानते थे तथापि भाष्यादि ग्रन्थोंके गहन शास्त्रीय विषयोंको इतना विशद करके समझा देते थे कि उनकी बात और इन ग्रन्थोंकी बात बिलकुल मिल जाती थी और कभी-कभी ऐसी बातें भी कहते थे, जो ग्रन्थोंमें नहीं मिलतीं। प्रतीतियुक्त वाणी होनेसे उनके भाषणका श्रोताओंपर तुरन्त और उत्तम परिणाम होता था।

स्वरूपसाक्षात्कार होनेके पश्चात् ब्रह्मवेत्ताओंकी वृत्ति बालोन्मत्तपिशाचवत् ही रहती है, यही प्रायः देखनेमें आता है। अक्कलकोटके स्वामी, फलटणके हरि बुवा, वाईके गोपाल बुवा ऐसी ही स्थितिमें थे। ऐसे पुरुषोंसे दर्शन और स्पर्शका ही लाभ होता है, सम्भाषणका लाभ प्रायः नहीं होता। परंतु सिद्धारूढ स्वामीकी यह विशेषता थी कि ब्रह्मविद्वरिष्ठकोटिके संत होनेपर भी इनका रहन-सहन किसी सामान्य मनुष्य-जैसा ही था। बड़ी शुद्धतासे रहते थे; सुँघनी या सुपारीका भी इन्हें व्यसन नहीं था। सिला हुआ कपड़ा ये कभी पहनते न थे, पैरोंमें कभी जूता भी न देते थे और सादगी क्या होगी? ऐसा सादा रहन-सहन होनेके कारण इनके दर्शन, स्पर्श और सम्भाषणका यह विविध लाभ सबको होता था।

महाराजके स्वैर आलाप कितने उपदेशमय होते थे, इसका दिग्दर्शन करानेके लिये उनके कुछ सूत्रवाक्य नीचे देते हैं—

१-भीतर बुखार न होना चाहिये, बाहर हो तो हुआ करे।

२-मिताहार ही सात्त्विक आहार है।

३-मनुष्यकी परीक्षा नेत्रोंसे, बातचीतसे और संग-साथसे होती है। उत्तरोत्तर कनिष्ठ परीक्षा जाने।

४-दोषोंको दोष दीखते हैं अर्थात् स्वयं अनुभव किये बिना दोष नहीं दीखते; इसलिये दूसरोंके दोष देखनेकी आदत न डाले; यह आदत बढ़ते-बढ़ते गुरुदोषदर्शनतक पहुँचती है।

५-कनक, कान्ता, पुत्र आदि स्वभावत: ही मोहक होते हैं। अज्ञानी मोहके वश होकर दुखी होते हैं और ज्ञानी इसे वस्तुस्वभाव जानकर निर्मोह रहते हैं।

६-प्राप्त भोग-मोह, भुक्त भोगस्मरण और अप्राप्त भोगेच्छा—इस त्रयीका त्याग करो तो सुख न चाहोगे तो भी सुख तुम्हारा पीछा न छोड़ेगा।

७-स्त्री-पुत्रादि विषयोंमें जो आसक्ति होती है, उसी आसक्तिके त्यागको वैराग्य कहते हैं।

८-जो बात जैसी है, उसे वैसा ही जानना ज्ञान कहाता है।

९-प्रतिबन्धके न रहते प्रतिबन्धका होना मानना ही प्रतिबन्ध है।

१०-सुखकी अनुकूलताके बिना मनकी प्रवृत्ति नहीं होती। इसलिये जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहाँ-वहाँ सुख होता ही है।

११-विषय-भोग सुखके साधन नहीं हैं, यदि होते तो सुषुप्तिमें विषयाभावके होते सुख न होता।

१२-आजकलकी हालतमें योगसाधन करना आँगनके सूर्य-प्रकाशको देखना छोड़ खिड़कियोंके छिद्रोंमेंसे उस प्रकाशको देखना है।

महाराजके भक्तोंने हुबलीकी उसी आमकी बगियामें महाराजके लिये एक मठ बनवा दिया। यह इतना बड़ा है कि उसमें दो-तीन सौ आदमी रह सकते हैं। इस मठका वातावरण महाराजके कारण अब भी परिशुद्ध, शान्त और दिव्य है। जो कोई वहाँ जाते हैं, उनका मन स्थिर-शान्त होकर वहाँसे हटना नहीं चाहता। मठके सामने एक स्वच्छ सरोवर है। शिवरात्रिके अवसरपर अष्टमीसे चतुर्दशीतक यहाँ बड़ा ही उत्सव होता है, उत्सवमें अखण्ड नामजपका एकमात्र मन्त्र है, **ॐ नम: शिवाय**। संवत् १९८६ ई० में भाद्र कृष्ण १ को आपने अन्तिम समाधि ली। (संतचरित्रमालासे)

उदार व्यवहार हर स्थितिमें प्रसन्नतादायक

श्रीताराकान्तराय बंगालके कृष्णनगर राज्यमें उच्च पदपर आसीन थे। नरेश उन्हें अपने मित्रकी भाँति मानते थे। बहुत समयतक उन्होंने राजभवनके ही एक भागमें निवास किया। जाड़ेकी ऋतुमें एक दिन वे बहुत अधिक रात बीतनेपर जब अपने शयन-कक्षमें पहुँचे तो वहाँ उन्होंने देखा कि उनका एक पुराना सेवक उनकी शय्यापर पायँतानेकी ओर सो रहा है। श्रीरायने एक चटाई उठायी और उसे बिछाकर चुपचाप भूमिपर सो गये। कृष्णनगरके नरेशको सबेरे-सबेरे उन्हें एक आवश्यक सन्देश सुनाना था। शीघ्रतावश नरेश स्वयं श्रीरायको वह सन्देश सुनाने उनके शयन-कक्षकी ओर चले आये। नरेशने उनका नाम लेकर पुकारा, इससे रायमहोदय हड़बड़ाकर उठ बैठे। शय्यापर सोया नौकर भी जाग गया और डरता हुआ एक ओर खड़ा हो गया।

राजाने समाचार सुनानेसे पहले पूछा—'राय महाशय! यह क्या बात है, आप भूमिपर सोते हैं और सेवक शय्यापर ?'

श्रीरायने नम्रतापूर्वक कहा—'मैं रातमें लौटा तो यह शय्याके पायँताने सो गया था। मुझे लगा कि इसका स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा अथवा काम करते-करते बहुत अधिक थक जानेसे शय्यापर तनिक लेटते ही इसे नींद आ गयी होगी। जगा देनेसे इसे कष्ट होता और चटाईपर सो जानेमें मुझे कोई असुविधा नहीं थी; अपितु इसमें मुझे प्रसन्नता ही हुई।'

कहानी—

दानके दृष्टान्त

(श्रीरामेश्वरजी टाँटिया)

एक दिन अपने किसी मित्रके साथ एक संस्था देखने गया। वहाँके पंखोंकी तीनों पंखुड़ियोंपर बड़े-बड़े अक्षरोंमें उनके द्वारा दानकी घोषणा लिखी हुई थी। इस सन्दर्भमें जब मैंने कुछ नहीं कहा, तो वे स्वयं बोले—पिछले वर्ष ये चारों पंखे हमने ही दिये हैं। मुझे लगा कि यहाँ आनेवाले अधिकांश लोगोंसे वे यही बात दुहराते हैं। मैंने हँसकर कहा—यह तो इतने बड़े-बड़े अक्षरोंमें विज्ञापनसे ही पता चल जाता है। देखा कि मेरी बात सुनकर वे कुछ झेंप-से गये।

वैसे दान देकर नाम-बड़ाई सभी लोग चाहते हैं, परंतु इसकी भी एक सीमा होनी उचित है। आज अधिकांश दानी सौ देकर पाँच सौका नाम चाहते हैं, परंतु आजसे चार सौ वर्ष पहले प्रसिद्ध दानवीर रहीमको किसीने पूछा था कि आप दान देते समय आँखें नीची क्यों रखते हैं? इसपर उन्होंने उत्तर दिया—

देनहार कोऊ और है, भेजत है दिन रैन।
लोग भरम हम पर धरैं, यातै नीचे नैन॥

खानखाना अब्दुल रहीम अद्भुत दानी थे, परंतु उस तरहके कुछ व्यक्ति बिरले ही होते हैं। इस सन्दर्भमें विभिन्न समयके दो चित्र उपस्थित करता हूँ।

देशके प्रसिद्ध नेता श्री श्रीप्रकाशजीके पूर्वजोंमें दो सौ वर्ष पहले इसी प्रकारके एक दानवीर हो गये हैं। उनके यहाँ बीसियों नौकर-चाकर तथा मुनीम-गुमाश्ते थे, जिनका वेतन एक रुपयेसे दस रुपये माहवारतक था। एक बार लगातार दो वर्षोंतक अकाल पड़ा, चीजोंके दाम महँगे होते गये। सर्वसाधारणके भूखों मरनेके दिन आ गये। शाहजीने एक दिन तीन-चार मुनीमोंको बुलाकर कहा कि बहुत दिनोंसे तहखानेमें पड़ी रहनेके कारण अशर्फियाँ गीली हो गयी हैं, इसलिये इनको धूपमें सुखा लो। शामको तौलनेपर अशर्फियाँ उतनी ही रहीं, भला सोनेका क्या सूखता? शाहजीने उनको कहा—'तुम लोग कुछ काम करना नहीं जानते, कल इनको अच्छी तरहसे सुखाओ।' इशारा स्पष्ट था।

दूसरे दिन अशर्फियाँ एक पाव कम थीं, शाहजी खुश थे। सूखी हुई अशर्फियाँ वापस तहखानेमें रख दी गयीं। इसी तरह जबतक वे जीये, जरूरतमन्दोंको गुप्त रूपसे हर प्रकारकी सहायता देते रहे। यहाँतक कि एक हाथका दिया दूसरे हाथको पता नहीं चलता। लोग उन्हें झक्की समझते और प्रेमपूर्ण हँसीमें 'झक्कड़शाह' कहने लगे। उनके परिवारवालोंने बड़ाबाजारके प्रसिद्ध मनोहरदास कटराके साथ-साथ धर्मतलाके मैदानमें मनोहरदास तालाब बनवाया था। इसके चारों तरफकी छतरियोंसे आज भी सैकड़ों व्यक्ति धूप तथा वर्षामें आश्रय लेते हैं और उनके द्वारा छोड़ी हुई गोचर-भूमिमें सैकड़ों जानवर चरते रहते हैं।

इस प्रसंगमें, रामगढ़ (शेखावटी)-के एक सेठकी बात याद आ जाती है। पौष-माघमें इस क्षेत्रमें बहुत ज्यादा सर्दी पड़ती है। कभी-कभी तो रातमें बाहर रखा हुआ पानी जमकर बर्फ हो जाता है। ऐसी ही एक रातमें सेठजीने गीदड़ोंकी 'हुआँ-हुआँ' सुनी। दूसरे दिन पण्डितोंको बुलाकर पूछा, तो उन लोगोंने बताया कि ज्यादा सर्दीके कारण सब ठिठुर रहे हैं।

गीदड़ोंकी संख्या पूछनेपर—चौदह-पन्द्रह सौ बता दी और उतनी ही रजाइयोंकी आवश्यकता भी। सेठजीने गुस्सेसे कहा—'महाराज, ऐसा अन्धेर क्या करते हैं! पन्द्रह

सौ में पाँच सौ बच्चे भी तो होंगे, उनको अलग रजाईकी क्या जरूरत है? वे तो माँ-बापके साथ ही सो जायेंगे।'

खैर, दो-तीन दिनोंमें ही हजार रजाइयाँ भरवाकर पण्डितोंकी मार्फत भेज दी गयीं। सेठजी हँसकर मित्रों और सेठानीको कह रहे थे—'मुझे ठगना सहज नहीं है। देखो, किस प्रकार पाँच सौ रजाइयोंकी बचत कर ली!'

दूसरी रात फिर गीदड़ोंकी दर्द-भरी पुकार सुनकर सेठजीकी नींद उचट गयी। पूछनेपर उत्तर मिला—'श्रीमान्! रजाइयोंसे सर्दी तो मिट सकती है, परंतु पेटकी भूख नहीं, बेचारे कई दिनोंसे भूखे हैं, इसीलिये रो रहे हैं। दूसरे दिन बहुत-सा हलुआ-पूड़ी बनवाकर भेज दिया गया। अगली रात फिर वही आवाजें आयीं। लिहाजा, फिर पण्डितोंको बुलाया गया। इस बार हँसते हुए उन्होंने कहा—'सेठजी! वे अच्छी तरह खा-पीकर आरामसे रजाइयाँ ओढ़कर बैठे हैं। आपको आशीर्वाद दे रहे हैं कि रोज इसी तरह देते रहेंगे।'

मुनीमोंने सेठजीको बहुत कहा कि इन पण्डितोंने आपको ठग लिया है, भला कहीं गीदड़ भी रजाइयाँ ओढ़ते हैं या पंगत लगाकर हलुआ-पूड़ी खाते हैं? परंतु सेठजी किसी तरह यह स्वीकार करनेको तैयार नहीं थे। शायद मनमें तो वे भी जानते थे, परंतु उनको इस प्रकारके कार्योंसे एक नैसर्गिक आनन्द मिलता था और इसी बहाने गाँवके गरीब ब्राह्मणोंके पास कुछ चीजें पहुँच जाती थीं।

ये बातें तो सौ-डेढ़ सौ वर्ष पहलेकी हैं, परंतु इन दिनों भी ऐसे व्यक्ति हुए हैं। मेरे मित्र श्रीमहावीर त्यागीने भारत सरकारके भूतपूर्व खाद्यमन्त्री स्वर्गीय रफी अहमद किदवईकी एक घटना सुनायी थी, जिसे सुनकर वहाँ बैठे मित्रोंकी आँखें गीली हो गयी थीं।

एक दिन किदवईजी की नई दिल्लीवाली कोठीमें ५-६ मित्र बैठे थे, एक पुराना कांग्रेस कार्यकर्ता आकर उदासीभरे लहजेमें कहने लगा—'रफी भाई! लड़की बड़ी हो गयी है, विवाह तय हो गया है, तीन हजार रुपयेकी जरूरत है, इससे कममें किसी तरह भी काम पार नहीं पड़ेगा।' रफी साहबके पास अपना तो था ही क्या? परंतु उनके कुछ ऐसे मित्र थे, जो उनकी ऊलजलूल फरमाइशोंको भी पूरी करते रहते थे। खैर, उसको तीन हजार रुपये दिला दिये।

उसके जानेके बाद स्व० बालकृष्ण शर्मा नवीनने कहा—'रफी! तुम भी अव्वल दर्जेके बेवकूफ हो, फिजूलमें रुपये ठगा बैठे। उस भलेमानुसकी शादी तो हुई ही नहीं, फिर यह बेटी कहाँसे आ टपकी?' किदवईजीने मंजूर किया कि वे भी जानते हैं कि न तो उसकी शादी हुई है और न उसकी बेटी है। फिर तो त्यागीजीने किदवईजीको बुरा-भला कहना शुरू किया—'वजारतसे कुल बाइस सौ रुपये मिलते हैं, वे तो नवाब साहब चार-पाँच दिनोंमें खर्च कर दिया करते हैं। भला, यह भी कोई बात हुई?'

देखा गया कि किदवईजीकी आँखोंमें आँसू आ गये, कहने लगे—'भाई मेरे, यह बेचारा जरूर किसी आफतमें पड़ गया होगा, तभी तो बेटीकी शादीका नाम लेकर रुपये माँगने आया था। भला, मैं उसको बेईमान साबित करने बैठता या मुसीबतमें थोड़ी-सी सहायता करता? जिनसे दिलाता हूँ, वे तो लखपति-करोड़पति हैं। उनके लिये १०-२० हजारमें क्या फर्क पड़ता है?'

कहते हैं कि जब पण्डित नेहरू स्वर्गीय किदवईजीके गाँव गये और उन्होंने टूटे खपरैलोंका उनका छोटा-सा मकान देखा तो उन्हें रुलाई आ गयी थी। चारों तरफ गरीबी और अभाव नजर आ रहा था। उन्होंने बेगमसे पेंशन लेनेको बहुतेरा कहा, परंतु उनका जवाब था, 'जवाहर भाई, मुझे ऐसे शख्सकी बेवा होनेका फख्र हासिल है, जिसने सारी जिन्दगी फाका-मस्तीमें गुजार दी, परंतु उम्र-भर दोनों हाथोंसे जरूरतमन्दोंको दिया ही दिया। भला, अब मैं जिन्दगीके आखिरी दिनोंमें सरकारसे पेंशन लेकर क्या करूँगी? आखिर मेरा अकेलीका खर्च ही कितना है?' [**प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टाँटिया**]

पापका फल

(पं० श्रीआनन्दस्वरूपजी पाण्डेय)

सन् १९३६ ई० की बात है, कृषि-विभागकी ओरसे मैं ढकिया नामक गाँवमें रह रहा था। यह गाँव मुरादाबाद जिलेमें अमरोहासे मुरादाबाद जानेवाली सड़कपर स्थित है। गाँव जमींदारीकी हैसियतसे एक मुसलमान, जो पीरजादे कहलाते हैं, उनके पास ठेकेपर था। इन्हीं पीरजादेकी एक कोठी गाँवके बाहर ठीक सड़कपर थी। यहाँपर हिन्दूके नामपर एक सुनार था। नहीं तो, गाँवमें केवल मुसलमान ही बसते हैं, जो अपने को तुर्क कहते हैं।

इस गाँवमें जब मैं पहले-पहल गया तो सौभाग्यसे एक हिन्दू नौकर लेता गया था, अन्यथा पानी आदिके लिये जो तकलीफ होती, उसे मैं ही जानता। कोठीके चारों ओर एक लम्बा-चौड़ा बाड़ा भी था। इसमें माली भी मुसलमान ही था। वहाँ अपना पूरा प्रबन्ध कर लेनेपर मैंने अपनी पत्नीको भी बुला लिया।

इस गाँवके मुसलमान अपनेको बहुत हेकड़ समझते थे। ऐसी स्थितिमें, विशेषकर जब कि हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न जोरोंपर था, स्त्री-बच्चोंके साथ इस मुसलमान-प्रधान गाँवमें रहना कुछ अर्थ रखता था। इस समस्याको हल करनेका मेरे पास एक ही तरीका था और वह यह कि मैंने अपने मातहतोंमें एक मातहत ऐसा रख लिया, जो स्वयं हेकड़ था। वह रामपुरका पठान था। अपने ऐसे-वैसे मौकेके लिये उसका रखना मैंने अच्छा समझा। मैंने उसे रहनेके लिये बाहरकी एक कोठरी दे दी। उसने मुझे आश्वासन दिया कि जबतक रामपुरके पठानोंकी एक हड्डी भी बची रहेगी, तबतक आपके ऊपर किसी तरहकी आँच नहीं आ सकेगी। हुआ भी वैसा ही।

वह मेरे कामके लिये अपने सुख तथा अपनी मर्यादाकी भी परवा नहीं करता था। मैं यदि उससे आधी रातमें भी कहता कि 'खाँ साहब! आपको अभी अमुक गाँवमें जाना है और वहाँसे अमुक दवा या अमुक चीज लानी है।' बस, वह तुरंत तैयार हो जाता था। बहुत आज्ञाकारी था वह।

कुछ दिनोंके बाद मेरी पत्नीने एक पुत्ररत्न प्रसव किया। यह बच्चा अत्यन्त सुन्दर था। उसकी सुन्दरताकी प्रशंसा मैं नहीं कर सकता। मैं दौरेसे आता और उसे अपने नौकरकी गोदमें खेलता हुआ देखता तो तुरंत पुकार उठता 'कौशल'! वह मुझे देखते ही किलकारी मारकर हँसने लगता। यह बच्चा मुझे कितना प्रिय था—कैसे बताऊँ? उसकी सलोनी सूरत आज भी मेरी आँखोंके सामने है। यह घटना अपने उसी कौशल-प्यारेकी स्मृतिमें लिखी जा रही है। अब वह इस नश्वर जगत्में नहीं है। परमात्मा उसकी आत्माको शान्ति दें।

एक दिनकी बात है। मेरा दुर्भाग्य प्रबल था। मेरे एक मुसलमान मित्र आये। वे मेरे यहाँ पहले-पहल आये थे। इसलिये उनकी अच्छी मेहमानदारीके लिये मैंने कुछ रुपये खाँ साहबको दे दिये और ताकीद कर दी कि इनके लिये आप जो कुछ अच्छे-से-अच्छे खाना तैयार कर सकें, कर दें। उसने झटपट तैयारी कर डाली।

मैंने देखा, वह मुर्गेका एक चूजा भी ले आया था। उस समय मुझे बहुत क्रोध आया, परंतु मैं कुछ बोल न सका। मेहमानदारीके खयालसे मैंने चुप रहना ही अच्छा समझा। यों तो मैंने उसे पहलेसे ऐसी चीजें अपने यहाँ बनानेके लिये मने कर रखा था और वह मेरे डरसे बनाता भी नहीं था, परंतु उस दिन मेहमानदारीके लिये उसने ऐसा कर लिया। मैं खड़ा-खड़ा देख रहा था। उसने निर्दोष मुर्गेके बच्चेपर अपनी तेज छुरी फेर दी। उसकी गर्दन एक ओर गिरी और धड़ दूसरी ओर फड़फड़ाने लगा और कुछ देरतक फड़फड़ाता ही रहा। यह करुण दृश्य मुझसे देखा नहीं गया, मैं वहाँसे हट गया—कुछ समय बाद मैं यह बात भूल गया।

एक मास भी बीता नहीं होगा कि सहसा मेरा कौशल बीमार पड़ गया। हँसते-खेलते बालककी अस्वस्थतासे हमलोग घबरा गये। बेचारे खाँ साहब उसकी दवाके लिये रात-दिन दौड़ते फिरे। कभी किसी हकीमके पास जाते, कभी किसी डॉक्टरके पास। तात्पर्य यह कि प्रत्येक सम्भव उपचार किया गया, परंतु उससे उसे कोई लाभ नहीं हुआ। दो दिनकी ही बीमारीमें मेरा प्यारा रत्न कौशल चल बसा। घरमें रोना-चिल्लाना मच गया। जीवनमें पहला मौका था। जब मैं अपनेको सँभाल न सका, फूटकर रो पड़ा।

बच्चेकी तरह खूब रोया। रोते-रोते हिचकी बँध गयी।

कौशलकी माताका क्या कहना? वह अपने पुत्रके वियोगमें अत्यन्त आकुल रहती थीं। विवश होकर उनके कहनेके अनुसार मैं उन्हें घर पहुँचा आया।

एक दिनकी बात है, रातके तीन या चार बजे होंगे—मैं सो रहा था। स्वप्नमें जैसे मुझसे कोई कह रहा था, 'उस दिन यदि तूने मुर्गेके बच्चेकी जान न ली होती तो तेरा प्यारा बच्चा कौशल नहीं मरता!' अचकचाकर मैं जाग गया। उस समय मुर्गेके बच्चेका फड़फड़ाता हुआ धड़ मेरी आँखोंके सामने दिखायी दिया। मैं जिधर भी दृष्टि घुमाता, वहीं मुर्गेका बेगुनाह बच्चा फड़फड़ाता हुआ दीखता। उसी समय कौशलको अपनी गोदमें छीने जानेकी बात भी याद करता। यह था मेरे पापका फल।

उपर्युक्त घटनाको पढ़कर जगत् भले ही कहे कि मेरा हृदय निर्बल है या था। परंतु मैं यह माननेके लिये कभी तैयार नहीं हूँ कि किसी चोरको अपने अपराधकी सजा नहीं भोगनी पड़े, जबतक कि उसे कोई पुराना पुण्यकर्म हलका न कर दे।

इस घटनाके बाद मैंने शपथ कर ली कि अब अपने द्वारा ऐसा पाप कभी नहीं होने दूँगा और परम पिता परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि मेरे जीवनमें ऐसा पाप बननेका अवसर ही न आने दें।

हिंसाका कुफल

(श्रीलीलाधरजी पाण्डेय)

कुछ समय पूर्व बलरामपुरमें झारखण्डी नामक शिवमन्दिरके निकट बाबा जानकीदासजी रहते थे। वैराग्य एवं सदाचारमय जीवन ही उनका आदर्श था।

शिवमन्दिरके निकट पश्चिमकी ओर एक बृहत् सरोवर अब भी वर्तमान है। उसमें 'सुखी मीन जहँ नीर अगाधा' की भाँति स्वच्छन्द रूपसे असंख्य मछलियाँ निवास करती थीं। मछलियोंके ऊपर बाबाकी करुणाकी छत्रछाया थी। फलस्वरूप किसीको भी तालाबकी मछलियोंको मारनेका साहस नहीं होता था, यद्यपि तालाबके किनारे मांसाहारियोंकी ही बस्ती थी। बाबाके अहिंसा-व्रतके फलस्वरूप मछलियोंको न मारनेकी घोषणा नगरभरमें व्याप्त थी।

एक बारकी बात है कि उस नगरमें एक मुसलमान दारोगा स्थानापन्न होकर आया। बाबाकी घोषणा उसके कानोंमें भी पड़ गयी। कट्टर यवन बाबाकी इस घोषणासे जल उठा और उसने तालाबमें मछली मारनेका पक्का निश्चय कर लिया। क्रोधसे जलता हुआ वह बाबाकी हस्ती देखनेपर उतारू हो गया। फलतः उसने अपने सालेको मछली मारनेके लिये तालाबपर भेजा। किंतु 'जाको राखे साइयाँ मारि सके ना कोय' मध्याह्नतक खोज करते रहनेपर भी एक मछली भी उसके हाथ न आ सकी। बाबाजीने सुना कि दारोगाजीका साला तालाबमें मछलियोंका शिकार कर रहा है, तो वे अविलम्ब उसके पास जाकर बोले—'बेटा! मैं किसीको भी इस तालाबकी मछलियोंको नहीं मारने देता हूँ। अपनी बंसी निकालकर चले जाओ। बेचारी गरीब मछलियोंको न मारो।'

बाबाकी बात सुनकर वह सरोष चला गया और घर पहुँचकर सारा समाचार दारोगासे कहा। उसके कथनपर दारोगा क्रोधसे तिलमिला उठा। दूसरे ही दिन अन्य साधनों और कर्मचारियोंके सहित मछलियोंका शिकार करनेके लिये उसने अपने सालेको यह कहकर भेजा कि 'तुम चलो, काम शुरू करो, हम अभी आते हैं।' उसने पहुँचते ही मछलियोंको मारना शुरू किया। बाबाजी यह सुनते ही वहाँ पहुँचकर कुछ रोषभरे शब्दोंमें उसे फटकारने लगे—'मैंने तुमको कल ही रोक दिया था; किंतु तुमने मुझे शक्तिहीन समझकर नहीं माना। जानते नहीं हो, इस तालाबकी मछलियोंके रक्षक श्रीहनुमान्‌जी हैं!' तबतक दारोगा भी आ पहुँचा था। वह हनुमान्‌जीका नाम सुनते ही आगबबूला हो उठा और बाबाको मारनेके लिये अपने सालेको ललकारा। वह बाबापर झपटा ही था कि एक अज्ञात और अदृश्य शक्तिने उस नराधमको तालाबकी अथाह जलराशिमें विलीन कर दिया। सब लोग भयभीत हो गये और चारों ओर हाहाकार मच गया।

काठसे मारे हुए दारोगाजी किसी भाँति शवको निकलवाकर चुपचाप चले गये!

श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग—

मेरे वैरि-भावकी रक्षा करना

[युद्धभूमिमें रावणका श्रीरामसे मौन निवेदन]

(आचार्य श्रीरामरंगजी)

खर-दूषणके वधका समाचार सुनते ही रावण स्तब्ध रह गया। उसकी आँखोंमें उनसे सम्बन्धित दृश्य घूम गये। उनकी उग्र तपस्या, उसके कारण लोक-पितामह ब्रह्माजीका प्रकट होना, उनसे रक्ष-प्रकृतिके कारण वर माँगना कि 'हम किसीके द्वारा मरें नहीं', ब्रह्माजीका वरदान कि 'तुम्हें देव-दानव-यक्ष-गन्धर्व-किन्नर-वानर-मनुष्य-सरि-सर्प आदिमेंसे कोई भी नहीं मार सकेगा, तुम्हारा अन्त केवल तुम्हारे द्वारा ही होगा।'

रावण इसका साक्षी था; क्योंकि जहाँ वह कुम्भकर्ण-विभीषणके साथ तपस्या कर रहा था, वहीं तो ये खर-दूषण भी तपस्या कर रहे थे। एक ही समयमें तो ब्रह्माजीने इन्हें उसके साथ वरदान दिये थे। देवलोककी जो दुर्दशा इन्होंने की थी, उसे सुनकर तो कई कठोर दानव भी काँप गये थे। देवराज इन्द्रकी सुधर्मा सभासे भगवान् वामनका रत्नजटित विशाल विग्रह इन्होंने ही तो उखाड़कर पुष्पक विमानमें चढ़ाया था। जिसके दिव्य रत्न निकालकर रावणने उसे लंकाके भयंकर कारागारके प्रांगणमें डलवा दिया था। वे खर-दूषण मारे गये। मल्लक्रीड़ामें कुम्भकर्ण क्या, स्वयं उसे भी कँपा डालनेवाले, खर-दूषण मारे गये। वे किस कारण परस्पर भिड़कर, कालकी भेंट चढ़ गये? नहीं समझा, परंतु वे नहीं रहे, यह सत्य समझ गया। समझ गया कि वे उसके अन्तकी भूमिकाकी रचना करनेके लिये अपना अन्त कराकर चले गये।

यह समाचार उसकी अपनी भगिनी शूर्पणखा दे रही थी, जिसे नकारा नहीं जा सकता था। वह शूर्पणखा दे रही है, जो प्रबल गजराजों और वनराजोंको अपने पराक्रमसे पालतू पशु बनानेमें सिद्धहस्त मानी जाती रही। बलवान्-से-बलवान् मनुष्यको भी गीले वस्त्रकी भाँति निचोड़कर, उसका रक्त गट-गट करके पी जानेवाली वह शूर्पणखा दे रही है, जो स्वयं अपने नाक-कान भेंट करके आ रही है। यह वह शूर्पणखा है, जिसने वरुणदेवके पाशको कच्चे धागेके समान तोड़कर उन्हींपर फेंक दिया था। उस शूर्पणखाके नाक-कान काट लेनेवाला कोई साधारण मानव नहीं हो सकता। स्वयं अपने समान बलवान् जानकर जिन्हें लंका-साम्राज्यके सीमा-रक्षकके रूपमें दण्डकारण्यमें अजेय चौदह सहस्र दुर्धर्ष रक्ष सैनिक देकर, निश्चिन्त बना बैठा था, वे अजेय कीर्तिके स्वामी गिद्ध-काक-शृगालोंके भोजन बनकर, धरतीकी धूलिमें लोटकर, कालदेवकी थालीमें दिव्य व्यंजनोंकी सज्जा बनकर रह गये। नहीं-नहीं, इन्हें किसी असाधारणसे असाधारण राजाका कोई प्रबल-से-प्रबल राजकुमार भी यह गति प्रदान नहीं कर सकता। हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुका वध करनेवाले, दानवराज बलिकी सत्ताको धराधामसे विस्थापित करनेवाले श्रीमन्नारायण हरि ही दशरथ-पुत्रके रूपमें इस धरतीपर पदार्पण कर चुके हैं। दण्डकारण्यमें अपना पराक्रम प्रकटकर, इस दशकन्धरको अपने आगमनकी सूचना विधिवत् दे चुके हैं। अब मेरा क्या कर्तव्य है?

प्रीतिपूर्वक चरणोंकी शरण ग्रहण करना एक उपाय है, किंतु मेरे कृत्य इस दिशामें मुझे पूर्णत: निरुपाय बना चुके हैं। श्रीरामका शरणागत होनेका मेरा विचार है, इसकी भनक पड़ते ही यह विशाल राक्षस समूह, जो मुझे अपना परम संरक्षक-अभेद्य कवच-अमोघ ब्रह्मास्त्र मान रहा है, घोर विद्रोही बनकर मुझे कूकर-शूकर बनकर नोंच डालेगा। रक्षेश्वरके रूपमें मुझे मान्यकर, जिन्होंने अनेक ऋषि-मुनियोंको चबा डाला, उनकी खूनी डाढ़ोंकी बाढ़में दशाननके रूपमें प्रसिद्ध यह लंकेश्वर नदीतटका एक साधारण वृक्ष बनकर लुप्त हो जायगा। नहीं-नहीं, शरण नहीं रण होगा। उसमें निश्चित रूपसे मरण होगा। अब इस राक्षसेश्वरका एक ही कर्तव्य है कि जिन राक्षसोंको राक्षस बनाया है, जिन्हें विश्वकी दुर्गतिका कारण बनाया है, उस अपनी प्रजाकी सद्गतिका कारण बनूँ।'

अपना अन्तिम और साथ ही परम कर्तव्य मानकर, रावण संकल्पपूर्वक खड़ा हो गया। वेद-वेदांगके प्रकाण्ड पण्डित ऋषिपुत्रने अपने मस्तिष्कमें रक्ष-उद्धारके सम्पूर्ण कार्यक्रमकी रूप-रेखा क्षणभरमें बना डाली। श्रीगणेशके रूपमें सर्वप्रथम मारीचका उद्धार निश्चित किया। लंकामें

केवल एक यही तो था, जिसने श्रीरामसे संघर्ष करनेका प्रयास किया था। उनके दर्शन महर्षि विश्वामित्रकी यज्ञशालाके द्वारपर किये थे। न्यायकी दृष्टिसे उद्धारका जहाँ प्रथम अधिकारी था, वहीं राजनैतिक दृष्टिसे भयमुक्त होनेके लिये उससे सर्वप्रथम मुक्त होना परमावश्यक था। यह यदि जीवित रहेगा तो राक्षसोंमें श्रीरामके बल-पौरुषका वर्णन किये बिना नहीं रहेगा। वे राक्षस अपनी तामसी प्रकृतिका तो त्याग नहीं कर पायेंगे किंतु लंकासे भाग अवश्य जायेंगे। शान्त रह नहीं पायेंगे। असहाय अवस्थामें मारे जायँगे। राक्षसोंका विश्वविदित पराक्रम निन्दित होकर रह जायगा। अत: रक्षोद्धार-यज्ञमें प्रथम आहुति इसीकी बने।

सभी जानते हैं कि वह मारीचके पास गया। मारीचने उसे लंका लौट जानेके लिये कहा, किंतु उसके क्रोधके सम्मुख विवश होकर अन्तमें रामके हाथों अपनी मुक्तिका संकल्प लेकर स्वर्णमृग बना। उनके त्रैलोक्य-विमोहक रूपका ध्यान करता हुआ, अन्तिम समयमें दर्शनकी अदम्य-लालसाकी पूर्तिका हृदयमें विचार करता हुआ, लोकातीत श्रृंगारसे सुसज्जित होते हुए, पतिके साथ चितारोहण करनेको आतुर सुन्दरीके समान श्रृंगारपर श्रृंगार करते हुए चल पड़ा। 'हा सीता, हा लक्ष्मण' का उद्घोष करके, प्रभुका स्मरण करता हुआ, उनके नेत्रोंमें नेत्रोंसे समर्पण करते हुए, चला गया। सीताहरण हुआ। श्रीराम समुद्रपर सेतु निर्माणकर लंका आ गये। एक-एक कर प्रहस्त-अकंपन-अतिकाय-मकराक्ष-विरूपाक्ष-कुम्भ-निकुम्भ आदिको सेना दे-देकर भेजता रहा। उनके अन्तके समाचार आते रहे। विलाप सुनता रहा। प्रलाप करता रहा। मनमें निर्धारित कार्य-कलापके अनुसार एकके पश्चात् एकको भेजता रहा। इसी क्रममें एक दिन सोते हुए कुम्भकर्णको भी जगाकर अनन्त-निद्रा-प्राप्तिके लिये भेज दिया। मेघनादने स्पष्ट कह दिया था।

'ब्रह्मघातिनी शक्तिका निराकरण कोई संजीवनी बूटी नहीं कर सकती। हनुमान्के द्वारा द्रोणाचलसे फूल-पत्ती मँगाना, एक नाटक है। ब्रह्मदत्त शक्तिको असफल ब्रह्माजीके आराध्य स्वयं नारायणने राम-रूपमें किया है। अब भी समय है।' उसे कायर कहकर फटकारा। उन शब्दोंके घावोंकी अनन्त पीड़ासे तिलमिलाकर, प्राणार्पणका दृढ़ संकल्प धारणकर, न लौटनेके लिये चला गया। दूर-दूर बैठे नरांतक और अहिरावण आमन्त्रित किये गये। दूर-दूर चले गये। जब कोई शेष नहीं बचा तो स्वयं युद्धभूमिमें आया।

प्रभुके नेत्रोंसे नेत्र मिले। उनमें याचना थी कि 'आपकी त्रिभुवनमोहिनी रूपमाधुरी मेरे नेत्रोंका विषय बनकर भी मेरे वैरि-भावको प्रभावित न करे। विभीषणको रणमें वीरगति प्राप्त करनेवाले राक्षसोंके श्राद्ध-तर्पणके लिये मैंने ही भेजा है। इसकी रक्षा करना। रक्षेश्वरके रूपमें अजर-अमरकर, लंकाको धरतीसे लुप्त मत होने देना। उसके अस्तित्वकी रक्षा करना।'

अपने मुकुटको बाँका करके, मस्तकका बेलपत्र खिसकाकर समझा दिया कि 'भगवान् शंकरका यह दिव्य विग्रह जो लंकेश्वरका शिरोभूषण है, मेरे सामने ही भावी लंकेश्वरके मस्तकपर प्रतिष्ठितकर, मेरे नयनोत्सव! मुझे धन्य कर देना।'

अधर तो राम-रावणमेंसे किसीके नहीं हिले। मायावी सीताका रहस्य जैसे माया और मायापतिके मध्यका विषय रहा, उसी प्रकार यह संवाद भी केवल भगवान् शंकर ही जान सके। विश्व जाना तो तब जाना जब विश्वनाथने उसे प्रकट करना उचित माना। रावणका विचार—

होइहिं भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥

और अन्तमें उसके निष्कर्षके रूपमें कि—

तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥

—अत: जो निश्चय दृढ़तासे हृदयमें धारण किया, उसकी पूर्ति प्रभुके बाणोंको प्राण देकर, उस दानकी दक्षिणाके रूपमें अपनी अर्जित कीर्ति प्रदानकर रावण चला गया। रूपमाधुरीका परमासक्त, रूपमाधुरीसे अनासक्तके वेषमें जानेवाले अपने गुप्त भक्तके मस्तक धरतीकी धूलिमें प्रभुने भी नहीं गिरने दिये। नीलकण्ठके कण्ठका आभूषण बना दिया। खलनायक ही सही किंतु भारतीय संस्कृतिके नायककी महागाथाका सदा-सदाके लिये अविभाज्य अंग बनकर रह गया। रावणके इस भावको कौन समझेगा? रावणने अपना कृत्रिम चरित्र प्रकटकर, रामचरित्रकी वास्तविकता सहजमें समझा दी। यही कहा जा सकता है कि—

'सोइ जानइ जेहि देहुँ जनाई।'

संन्यासका अर्थ

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

'ममता, कामना और तादात्म्यके त्यागका नाम ही संन्यास है। कपड़े रँगना और किसी सम्प्रदाय विशेषमें दीक्षा लेना तो संन्यासका बाहरी चिह्न है। केवल बाह्य चिह्न धारण करनेसे किसीकी मुक्ति नहीं होती।'

'सही करना, कुछ न चाहना और प्रभुके शरणागत होना, यह योग, बोध, प्रेमकी तैयारी है और इसीसे योग, बोध, प्रेमकी प्राप्ति होती है।'

'जगत्से सम्बन्ध टूटकर उस अनन्तके साथ अहंका सम्बन्ध जुड़ जानेका नाम ही 'योग' है। इसीसे सब संकल्पोंकी निवृत्ति होती है और उस अनन्तको सब जगह सबमें देखना ही 'बोध' है। योगसे दोष और कामनाओंका त्याग होता है और उस अनन्तको अपना मानना एवं अहंको उनके समर्पित करना ही प्रेम है, यानी प्रेमकी प्राप्ति होती है। केवल गृहत्याग करने एवं वस्त्र रँगनेमात्रसे किसीको योग, बोध, प्रेमकी प्राप्ति नहीं हो सकती। यह त्याग नहीं वरन् त्यागके भेषमें अपने कर्तव्यसे पलायन करना है।'

एक प्रश्न उठता है कि साधु माने क्या? इसकी व्याख्या पूर्व प्रवचनमें निम्नलिखित रूपमें की गयी थी, जो इस क्रममें प्रासंगिक है—

प्रश्न—साधु माने क्या?

उत्तर—साधु संसारके बाहर चले तो नहीं जाते, संसारसे सम्बन्ध अवश्य तोड़ देते हैं।

शरीरको गंगामें तो नहीं फेंक देते, शरीरसे सम्बन्ध अवश्य तोड़ देते हैं। साधु माने यही कि जो संसारसे सम्बन्ध तोड़ दे, चाहे घरमें रहकर, चाहे वनमें जाकर। साधु वह, जो किसीको हानि न पहुँचाये। जो प्रभुको पसन्द करे। तुम मानव हो, प्रसन्नतापूर्वक रहो, दुखी मत रहो, खिन्न मत रहो, व्यर्थ चिन्तन मत करो, थोड़े दिनका मेला है—सदा नहीं रहेगा।

हे मानव! भेषके साधु सब नहीं हो सकते, लेकिन बिना भेषके साधु हर भाई, हर बहन हो सकती है।

किसीको हानि मत पहुँचाओ। किसीको बुरा मत समझो और यथाशक्ति जिस परिवारमें, जिस समाजमें रहते हो, उसके काम आओ। क्या यह जीवन सबको नहीं मिल सकता? मिल सकता है। तो साधु माने साधक है; क्योंकि—

(१) हमें संसारकी सेवा करना है।

(२) हमें प्रभुका प्रेमी होना है।

(३) हमें अचाह होना है।

दयाका पुरस्कार

एक व्यक्ति शिकारके लिये जंगलमें गया। वहाँ उसने एक हरिनीको देखा, उसके साथ उसका छोटा बच्चा भी था। शिकारी दौड़ा, हरिनी तो डरकर जंगलमें छिप गयी, पर मृगशावक पकड़ा गया। शिकारी जब मृगीके उस बच्चेको लेकर चला, तब हरिनी भी निकल आयी और बच्चेके स्नेहवश वह भी पीछे-पीछे चलने लगी। शिकारीने कुछ दूर आनेके बाद पीछेकी ओर मुड़कर देखा, हरिनीकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी और वह पीछे-पीछे चली आ रही थी। शिकारी अपने गाँवके समीप आ गया था। तब भी हरिनी उसी प्रकार रोती चली आ रही थी। उसको दया आ गयी। उसने बच्चेको छोड़ दिया। बच्चा छूटते ही छलाँग मारकर अपनी माँ (हरिनी)-के पास पहुँच गया। हरिनी मूक आशीर्वाद देती हुई बच्चेको लेकर लौट गयी। रातको शिकारीने स्वप्नमें देखा—कोई कह रहा है—'इस दयाके फलस्वरूप तुम्हें बादशाही मिलेगी।' आगे चलकर यही व्यक्ति गजनीका बादशाह हुआ।

गोमूत्रमें छिपे जीवनसूत्र

❀ गाय जहाँपर खड़ी होती है, वहाँपर जो गोमूत्र गिरता है, उस जगहकी मिट्टीको खेतोंमें यूरियाकी तरह छींटनेसे यह यूरिया खादका एक बहुत अच्छा और सफल विकल्प है।

❀ गोमूत्र १० गुना पानीमें मिलाकर फसलपर छिड़कनेसे सम्पूर्ण खादकी पूर्ति हो जाती है।

❀ गायके मूत्रमें कार्बोलिक एसिड होता है, जो कीटाणुनाशक है, अत: शुद्धि और स्वच्छता बढ़ाता है।

❀ गोमूत्र शक्तिशाली कीटनाशक होनेके कारण फसलपर लगे कीटोंको भी छिड़काव करनेपर नष्ट कर देता है।

❀ गोमूत्र एक दिव्य औषध एवं कीट-नियन्त्रक है।

❀ उत्तरकाशीके निकट एक ग्राम है, जहाँ वर्षभर गोमाताओंका गोमूत्र संचितकर पाण्डु मृत्तिका मिलाकर घरोंकी पुताई होती है, जिसका प्रभाव तत्क्षण देखनेमें यह आया है कि उस स्थानपर छिपकली, मच्छर, मक्खी इत्यादि विषधारी जन्तु प्रवेश नहीं करते।

❀ गोमूत्र विषैले प्रभावोंको दूर करनेवाला एक प्रतिविष (एंटीडोट) है, विषनाशक (एण्टीटॉक्सिक) है, रोगाणुनाशक (एंटीसेप्टिक) है, एन्टीबायोटिक है, घावमें पैदा होनेवाले पीव (पस)-को सुखाता है, रोगावरोधक शक्तिको बढ़ाता है। गोमूत्रमें विटामिन 'बी' तथा कार्बोलिक एसिड होता है, जो रोगाणुओंका नाश करता है।

❀ गोमूत्र रक्तमें बहनेवाले दूषित कीटाणुओंका नाश करता है।—डॉ० सिमर्स (ब्रिटेन)

❀ किसी भी प्रकारकी औषधियोंकी मात्राका अतिप्रयोग हो जानेसे जो तत्त्व शरीरमें रहकर किसी प्रकारसे उपद्रव पैदा करते हैं, उनको गोमूत्र अपनी विषनाशक शक्तिसे नष्टकर रोगीको निरोगी करता है।

❀ गोमूत्रमें ताँबा भी होता है, जो मानव शरीरमें जानेपर स्वर्णरूपमें परिवर्तित होता है, जो सभी प्रकारसे विषनाशक है।

❀ विद्युत्-तरंगें हमारे शरीरको स्वस्थ रखती हैं। ये वातावरणमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपसे विद्यमान हैं। गोमूत्रसे प्राप्त ताम्र तत्त्व विद्युतीय आकर्षण गुणके कारण इनको शरीरमें आकर्षित करता है।

❀ अमेरिकाके डॉ० क्राफोड हेमिल्टन तथा मेकिन्तोशने बहुत पहले ही यह सिद्ध कर दिया था कि गोमूत्रके प्रयोगसे हृदय-रोग दूर होता है और मूत्र खुलकर आता है।

❀ बेलफास्टके प्रो० सिमर्स तथा अल्स्टरके प्रो० कर्कने गोमूत्रके महत्त्वके विषयमें अनेकों प्रयोग किये हैं और उनका कहना है कि गोमूत्र रक्तमें रहनेवाले दूषित कीटाणुओंका नाशक होता है। सजीव मांसपेशियोंके लिये यह हानि नहीं पहुँचाता, घावोंकी विषाक्तताको दूर करता है और पुराने दोषसे रक्तद्वारा संक्रान्त घावमें बढ़ते हुए पीबको रोकता है।

❀ डॉ० चाटी अपना अनुभव इस प्रकार बतलाते हैं, चालीस वर्षकी अपनी नौकरीमें मैंने कितने ही जलोदर रोगियोंका इलाज किया और पेट चीरकर २-३-४ बार भी पेटका पानी निकाल दिया, किंतु उनमेंसे अधिकांश रोगियोंकी मृत्यु हो गयी। मैंने सुना और आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें पढ़ा भी था कि इस रोगपर गोमूत्रका उपयोग बहुत लाभकारी होता है, फिर भी मुझे विश्वास नहीं होता था। एक बार एक साधु-महात्माने गोमूत्रके गुणोंका बहुत वर्णन कर कहा कि इसका जलोदरपर बहुत ही अच्छा उपयोग होता है। मैंने गोमूत्रका प्रयोग करके देखा तो विलक्षण लाभ हुआ।

❀ भारतमें अबतक किये गये शोध-परिणामोंसे ज्ञात होता है कि गोमूत्रका उपयोग प्रतिजैविक तथा कैंसर उपचारकी औषधोंके निर्माणमें जैववर्धक (बायो-इन्हान्सर)-की भूमिका कुशलतासे निभाता है। जैववर्धक पदार्थ उन्हें कहते हैं, जिनमें उपचार-क्षमता स्वयं अपने-आप निहित नहीं होती, परंतु वे अन्य औषधियोंमें अपनी उपस्थितिसे एक उत्प्रेरक (कैटलाइजर)-की

भूमिका निभाते हुए उस औषध-विशेषकी जैव सक्रियता और उपचार-क्षमताको वृद्धि प्रदान करते हैं। इसके पूर्वतक ऐसे जैववर्धक पदार्थ केवल वनस्पतियोंसे प्राप्त किये जाते रहे हैं। आसुत गोमूत्रके संयोगसे निर्मित प्रतिजैविक दवाओं (एण्टीबायोटिक)-की उपचार-क्षमतामें ५-७ गुणा वृद्धि स्थापित हो जाती है। कुछ औषधियोंमें यह वृद्धि ११ गुणातक हुई। कैंसर उपचारकी दवा (टैक्साल)-में भी ५ गुणा क्षमता—वृद्धि पायी गयी है अर्थात् इन दवाओंकी कम खुराकसे ही स्वास्थ्य-लाभ मिलने लगेगा और साइड-इफैक्टमें कमी होगी।

❀ नियमित गोमूत्रपानसे दमेकी बीमारी ठीक हो जाती है।

❀ उत्तरांचलके अल्मोड़ा जिलेमें पिछले २०-२५ वर्षोंसे दूर-दराजके ग्राममें जनसमुदायकी चिकित्सामें सक्रिय डॉ० पाण्डेयका कथन है कि उन्होंने वहाँके कई ग्रामोंके ७० से ८० वर्षतकके वयोवृद्ध स्वस्थ नागरिकोंको गायद्वारा मूत्र त्यागते समय उससे शरीर मलते, गरारा करते तथा कुल्ला करनेके साथ-साथ हाथोंमें भरकर सीधे पीते हुए देखा है। डॉ० पाण्डेय-जैसे अनुभवी एलोपैथ-पद्धतिके प्रैक्टिशनरका सुस्पष्ट रूपसे कहना है, 'गोमूत्र-सेवन ही उनके स्वस्थ, निरोग तथा दीर्घायु रहनेका राज है।'

❀ प० बंगालके पुरुलिया जिलेके ग्रामीण अंचलमें गाँवके वैद्यजी यह सलाह देते हैं कि 'बच्चेकी झाड़-फूँक गायकी पूँछके अन्तमें उगे बालोंसे करो।' इसे अपनानेसे बच्चा ठीक भी हो जाता है।... वस्तुतः गाय (गोवंश)-द्वारा मल-मूत्र त्यागनेके दौरान उनके इन बालोंमें गोबर-गोमूत्र निरन्तर लिपटते रहनेके फलस्वरूप उनमें उसकी सुगन्ध समायी रहती है और इसी सुगन्धके प्रभावसे रोग-निवारण हो जाता है। आयुर्वेदकी प्राचीन सुगन्ध चिकित्सा-पद्धति भी है। वर्तमानमें एलोपैथी चिकित्सामें सर्दी-जुकाम, अस्थमा, मधुमेहके रोगियोंके लिये विभिन्न प्रकारके इन्हेलरोंका प्रयोग उसी सुगन्ध-चिकित्साका एक रूप है।

❀ नन्दिनीके मूत्रको आँखोंमें लगानेसे राजा रघुको दिव्य नेत्रकी प्राप्ति हो गयी थी, जिससे चुराये हुए अश्वसहित इन्द्र दिखायी देने लगे थे।

❀ सहदेवने राजा विराटसे कहा कि उत्तम लक्षणवाले उन बैलोंकी भी मुझे पहचान है, जिनके मूत्रको सूँघ लेनेमात्रसे बन्ध्या स्त्री गर्भधारण करनेयोग्य हो जाती है।

❀ इन्दौरके श्रीवीरेन्द्रकुमारजी जैनद्वारा पुनः स्थापित काऊ—यूरीन थिरेपीको भारत सरकारके पेटेंट विभागने वर्ष २००४ ई० के आरम्भमें पेटेंट प्रदान किया है। श्रीजैनने अपने प्रयासोंसे भारतमें बीस गोमूत्र-चिकित्सा एवं अनुसन्धान-केन्द्र स्थापित किये हैं।

❀ श्रीरेवाशंकरजी शर्माने अनेक असाध्य रोगोंसहित १०८ रोगोंपर गोमूत्रकी अनेक औषधियाँ बनाकर गोमूत्र चिकित्सा शिविरोंमें प्रयोग करके गोमूत्रकी श्रेष्ठता सिद्ध कर दी है।

❀ भारतीय गायके गोमूत्रसे कामधेनु-वटी बनाकर १११ रोगोंका सफलतापूर्वक इलाज किया गया है।

❀ गोमूत्र से भस्म, मावा, आसव, अर्क, वटी बनाकर पचासों रोगोंकी चिकित्सा हो रही है।

❀ कलकत्तेके एक सज्जनने गोमूत्रको कड़ाहीमें उबालकर, बचे द्रव्यकी गोली बनाकर इसका लाभ मधुमेह-पीड़ित व्यक्तियोंको पहुँचाया।

❀ जिन महीनोंमें गाय दूध देती है, उस वक्त गोमूत्रमें लेक्टोज रहता है, जो हृदय और मस्तिष्कके विकारोंमें बहुत हितकारी है।

❀ गोमूत्र पूर्णतः निर्विष होनेसे हानिकारक नहीं है।

❀ गोमूत्र आजीवन चिर गुणकारी होता है।

❀ वैज्ञानिकोंने गोमूत्रके संयोगसे बैटरी सेलका निर्माण करके उसकी विद्युत्-अपघटनीय ऊर्जा (इलेक्ट्रोलिटिक ऊर्जा)-का उपयोग करते हुए घड़ी एवं कैलकुलेटरके प्रचलनका सफल प्रयोग किया है।

[संकलनकर्ता—श्रीप्रशान्तजी अग्रवाल]

साधनोपयोगी पत्र

(१)

प्रेमके नामपर....

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तर लिखनेमें कुछ देर हो गयी। इधर काम भी ज्यादा रहा और स्वभावदोष तो है ही। क्षमा कीजियेगा।

आपने अपने मनकी हालत बताकर मेरी सम्मति पूछी, सो इस सम्बन्धमें मैं क्या कहूँ? यदि आपके मनमें पवित्रता है और उधरसे भी कोई विकार नहीं है तो बहुत ही अच्छी बात है, परंतु जहाँतक मैं समझ सका हूँ—इस स्पष्टोक्तिके लिये आप क्षमा कीजियेगा—आप लोगोंका प्रेम पवित्र नहीं है। जिस प्रेममें भोग-सुखकी इच्छा है, संयमका अभाव है, कर्तव्य-विमुख होकर केवल पास रहने या देखते रहनेकी ही चेष्टा है, जरा भी मानसिक विकार है, स्वार्थ-साधनका प्रयास है और परस्पर पवित्रता बढ़ानेकी जगह इन्द्रिय-तृप्तिकी सुविधा खोजी जा रही है, वह प्रेम कदापि पवित्र नहीं हो सकता।

प्रेमका प्रधान स्वरूप है निज-सुखकी इच्छाका सर्वथा त्याग। भोगप्रधान पाशविक इन्द्रिय-सुखका प्रयास तो पवित्र प्रेमके नामको कलंकित करनेवाला पाप है। प्रेम सदा देता ही रहता है, जरा भी बदला नहीं चाहता। असलमें जिस प्रेमके आधार भगवान् नहीं हैं—वह यथार्थ प्रेम नहीं है। प्रेम सदा स्वार्थशून्य है, इन्द्रियविकाररहित पवित्र है, भोगेच्छाके लिये उसमें स्थान नहीं। आजके मनुष्यने तो मोहको ही प्रेमका नाम दे रखा है और इसीका फल है महान् मानसिक अशान्ति और दारुण दु:खभोग।

जिनका परस्पर पवित्र प्रेम है, उनको परस्पर पवित्रता, पुण्य और सदाचरणकी उन्नतिमें सहायक होना चाहिये। परस्पर आत्मसंयमका क्रियात्मक अध्ययन करना चाहिये। त्याग और भगवदनुरागकी वृद्धि करनी चाहिये। आपके पत्रसे पता लगता है कि आप लोगोंको ये बातें रुचती ही नहीं। आप तो कल ही नाश हो जानेवाली चमड़ीके रूपपर और काल्पनिक गुणोंपर मोहित हैं। कुछ ही कालमें यदि ये गुण न दिखायी दें तो आपका प्रेम कच्चे सूतके धागेकी तरह टूट जा सकता है। यह भी कोई प्रेम है? प्रेम कभी टूटता ही नहीं। घटता भी नहीं। जितना है उतना ही नहीं रहता—वह तो प्रतिक्षण बढ़ता ही रहता है। उसमें रूप-गुणकी अपेक्षा नहीं है, वह तो प्रेमस्वरूप अच्युत परमात्माकी पवित्र देन है। आप इस मोहका त्याग कीजिये, इसीमें भलाई है। नहीं तो प्रेमके नामपर कामके कलुषित नरक-कुण्डमें जा गिरियेगा। सावधान! शेष प्रभुकृपा।

(२)

असली सद्‌गुण

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। नाटकमें पार्ट करनेकी तरह किये जानेवाले दिखावटी सत्य, अहिंसा, अक्रोध, क्षमा, ब्रह्मचर्य, दया आदिसे कुछ भी नहीं होता। उसी प्रकार नाटकीय ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और प्रेम भी निरर्थक ही हैं। जैसे नाटकका राजा वस्तुत: वैसा नहीं है। मुझको अच्छा बोलना—लोगोंको समझाना आ गया। बड़ी-बड़ी ऊँची बातोंका उपदेश भी मैं करने लगा, परंतु यदि मैं स्वयं उनका मर्म नहीं समझा और मेरे जीवनमें उन ऊँची बातोंने प्रवेश न किया तो मुझे क्या लाभ हुआ? धनके झूठे आडम्बरसे कोई धनी थोड़े ही हो गया? अतएव जीवनमें सात्त्विक गुणोंका और भक्ति, वैराग्य, ज्ञानका सच्चा विकास होना चाहिये। बड़ी लगनसे ऐसी चेष्टा करनी चाहिये। यह होता है—दूसरोंके दोष न देखकर उनके गुण देखनेसे, अपने अवगुण देखनेसे और जी-जानसे अपने अवगुणोंको नष्ट करके सद्‌गुणोंके प्रकाशके लिये अथक प्रयत्न

करनेसे। लोग दूसरोंके दोष देखते हैं, अपने नहीं देखते—फल यह होता है कि अपने अन्दर दोष आ-आकर भरते चले जाते हैं। सारे सद्गुण हमारे व्यवहारमें उतर आने चाहिये। बहुत बार आदमी भूलसे व्यावहारिक सत्तामें दोषोंका रहना अनिवार्य मानकर, युक्तिपूर्वक दोषोंका समर्थन करने लगता है, यह मनका बड़ा धोखा है। दोषका समर्थन किसी भी रूपमें नहीं करना चाहिये और अपने एक-एक दोषको दुःसह समझकर उसका त्याग करना चाहिये। सद्गुण और सद्व्यवहार केवल कथनमात्र न होकर क्रियात्मक होने चाहिये और प्रत्येक प्रतिकूल अवसरपर सावधानीके साथ डटे रहना चाहिये। जिससे सद्गुण और सद्व्यवहारका अभाव न हो जाय। धर्मकी परीक्षा काम पड़नेपर ही होती है। एकान्तमें सच्ची भक्ति हो, वही भक्ति है। सत्य और अहिंसा—जीवनमें उतरे रहें, वही सच्चे सत्य और अहिंसा व्रत हैं। शेष प्रभुकृपा।

(३)

भगवद्भक्ति और दैवी सम्पत्ति

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। भगवान्‌के नाम और भगवद्भक्तिकी महिमा अनन्त है। आप और हम तो क्षुद्र हैं—महापुरुष भी इनकी महिमा पूरी-पूरी नहीं गा सकते, परंतु भाई साहब! आप जिस ढंगसे भक्ति और भगवन्नामका माहात्म्य बतलाते हैं, वह मुझे पसन्द नहीं है। मैं तो मानता हूँ, भगवन्नामसे पापका लेश भी नहीं रहता। फिर यह कैसे स्वीकार करूँ कि भगवन्नामका सहारा लेकर दुष्कर्म करते रहना—जान-बूझकर भी उनसे हटनेका प्रयास और अभिलाषा न करना उचित है? मेरी समझसे भगवद्भक्तिके साथ दैवी सम्पत्तिका अनिवार्य संयोग है। कोई भगवद्भक्त भी बने और बेरोक-टोक व्यभिचार और परधन-हरण भी करता रहे। घण्टे, आध घण्टे कीर्तन कर ले और दिन-रात विना किसी ग्लानिके खुशी-खुशी जूए, शराब, परनिन्दा, परदोष-दर्शन और दूसरोंको ठगने और कष्ट पहुँचानेमें बीतें, यह कैसी भक्ति है, कुछ समझमें नहीं आता। यह सत्य है कि इससे अधिक पाप करनेवालोंको भी भगवन्नाम-कीर्तन और भक्ति करनेका अधिकार है, भगवान्‌का द्वार पापियोंके लिये बन्द नहीं है तथा भगवन्नाम और भगवद्भक्तिसे पापी भी शीघ्र पुण्यात्मा-महात्मा भी बन सकते हैं; परंतु जिनके मनमें बुरे कर्मोंसे जरा भी ग्लानि नहीं और जो इसीलिये भगवन्नाम लेते हैं कि उनके पाप ढके रहें या पाप करनेमें उन्हें सुविधा मिल जाय, उनके लिये बहुत विचारणीय बात है। यह सत्य है कि भगवन्नामकी पाप-नाश करनेकी शक्ति पापीके पाप करनेकी शक्तिसे कहीं अधिक है और अन्तमें उसके पापोंका नाश करके भगवन्नाम उसे तार देगा, परंतु जान-बूझकर पाप करनेके लिये ही नाम लेना भगवद्भक्तिका आदर्श क्योंकर माना जा सकता है? मेरा तो यह विश्वास है कि जो लोग भगवान्‌की सच्ची भक्ति करते हैं, उनमें मनका निग्रह, इन्द्रियोंका वशमें होना, अहिंसा, सत्य, सेवा, क्षमा, परदुःख-कातरता, मैत्री, दया आदि गुण क्रियात्मकरूपमें प्रत्यक्ष आ जाते हैं और इनके आनेपर ही भक्ति आदर्श मानी जाती है। अतएव मेरी तो आपसे प्रार्थना है कि आप भक्तिके साथ उसकी चिरसंगिनी—जिसके बिना भक्ति रह नहीं सकती—दैवी सम्पत्तिका भी पूरा आदर करें, तभी भक्तिका यथार्थ विकास होगा और तभी तुरंत शान्ति मिलेगी। यह याद रखना चाहिये कि भगवद्भक्तिके बिना दैवी सम्पत्ति प्राणहीन है और दैवी सम्पत्तिके बिना भक्ति नहीं होती। इन दोनोंका परस्पर अन्योन्याश्रयसम्बन्ध है। भगवद्भक्तमें कैसे गुण होने चाहिये, इसका विशेष विवरण गीतामें भगवान्‌ने बतलाया है। इसे बारहवें अध्यायके १३वें से २०वें श्लोकतक देखना चाहिये। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ५। ३२ बजेतक	मंगल	कृत्तिका दिनमें ३। ४८ बजेतक	१५ नवम्बर	× × × ×
द्वितीया दिनमें ३। १३ बजेतक	बुध	रोहिणी ,, २। १२ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २। ९ बजेसे, **मिथुनराशि** रात्रिमें १। २८ बजेसे, **वृश्चिक संक्रान्ति** सायं ५। ५७ बजे, **हेमन्तऋतु** प्रारम्भ।
तृतीया ,, १। ३ बजेतक	गुरु	मृगशिरा ,, १२। ४४ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** दिनमें १। ३ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८। ८ बजे।
चतुर्थी ,, ११। ७ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा ,, ११। २९ बजेतक	१८ ,,	**कर्कराशि** रात्रिमें ४। ४७ बजेसे।
पंचमी ,, ९। २९ बजेतक	शनि	पुनर्वसु ,, १०। ३३ बजेतक	१९ ,,	**अनुराधाका** सूर्य रात्रिमें १२। ५८ बजे।
षष्ठी ,, ८। १४ बजेतक	रवि	पुष्य ,, ९। ५७ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** दिनमें ८। १४ बजेसे रात्रिमें ७। ४९ बजेतक, **मूल** दिनमें ९। ५७ बजेसे।
सप्तमी प्रात: ७। २३ बजेतक	सोम	आश्लेषा ,, ९। ४७ बजेतक	२१ ,,	**सिंहराशि** दिनमें ९। ४७ बजेसे।
अष्टमी ,, ७। ३ बजेतक	मंगल	मघा ,, १०। ६ बजेतक	२२ ,,	**सायन धनुराशि** का सूर्य दिनमें २। १९ बजे, **मूल** दिनमें १०। ६ बजेतक।
नवमी ,, ७। १२ बजेतक	बुध	पू० फा० ,, १०। ५४ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७। ३४ बजेसे, **कन्याराशि** सायं ५। १३ बजेसे।
दशमी दिनमें ७। ५५ बजेतक	गुरु	उ०फा० ,, १२। १३ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** दिनमें ७। ५५ बजेतक।
एकादशी ,, ९। ४ बजेतक	शुक्र	हस्त ,, १। ५९ बजेतक	२५ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें ३। ५ बजेसे, **उत्पन्नाएकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, १०। ४२ बजेतक	शनि	चित्रा सायं ४। १० बजेतक	२६ ,,	**शनिप्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, १२। ३७ बजेतक	रवि	स्वाती रात्रिमें ६। ३७ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। ३७ बजेसे रात्रिमें १। ४१ बजेतक।
चतुर्दशी दिनमें २। ४४ बजेतक	सोम	विशाखा ,, ९। १३ बजेतक	२८ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें २। ३४ बजेसे।
अमावस्या सायं ४। ५४ बजेतक	मंगल	अनुराधा ,, ११। ४८ बजेतक	२९ ,,	**भौमवती अमावस्या, मूल** रात्रिमें ११। ४८ बजेसे।

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ६। ५३ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा रात्रिमें २। ११ बजेतक	३० नवम्बर	**धनुराशि** रात्रिमें २। ११ बजेसे।
द्वितीया ,, ८। ३६ बजेतक	गुरु	मूल ,, ४। १७ बजेतक	१ दिसम्बर	**मूल** रात्रिमें ४। १७ बजेतक।
तृतीया ,, ९। ५२ बजेतक	शुक्र	पू० षा० रात्रिशेष ५। ५६ बजेतक	२ ,,	**ज्येष्ठानक्षत्रका** सूर्य रात्रिमें ४। १० बजे।
चतुर्थी ,, १०। ४३ बजेतक	शनि	उ० षा० अहोरात्र	३ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। १८ बजेसे रात्रिमें १०। ४३ बजेतक, **मकरराशि** दिनमें १२। १४ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, ११। १ बजेतक	रवि	उ० षा० प्रात: ७। ९ बजेतक	४ ,,	**श्रीरामविवाह।**
षष्ठी ,, १०। ४७ बजेतक	सोम	श्रवण दिनमें ७। ४९ बजेतक	५ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें ७। ५५ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ७। ५५ बजे।
सप्तमी ,, १०। ५ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा ,, ८। ० बजेतक	६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०। ५ बजेसे।
अष्टमी ,, ८। ५७ बजेतक	बुध	शतभिषा प्रात: ७। ४३ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। ३१ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिमें १। ११ बजेसे।
नवमी ,, ७। २६ बजेतक	गुरु	पू० भा० प्रात: ७। २ बजेतक	८ ,,	**मूल** रात्रिशेष ६ बजेसे।
दशमी सायं ५। ३५ बजेतक	शुक्र	रेवती रात्रिमें ४। ४१ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ४। ३२ बजेसे, **मेषराशि** रात्रिमें ४। ४१ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें ४। ४१ बजे।
एकादशी दिनमें ३। २९ बजेतक	शनि	अश्विनी रात्रिमें ३। १० बजेतक	१० ,,	**भद्रा** दिनमें ३। २९ बजेतक, **मोक्षदाएकादशीव्रत (सबका), श्रीगीता-जयन्ती, मूल** रात्रिमें ३। १० बजेतक।
द्वादशी ,, १। १४ बजेतक	रवि	भरणी ,, १। ३२ बजेतक	११ ,,	**प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, १०। ५३ बजेतक	सोम	कृत्तिका ,, ११। ५० बजेतक	१२ ,,	**वृषराशि** दिनमें ७। ६ बजेसे।
चतुर्दशी प्रात: ८। ३३ बजेतक	मंगल	रोहिणी ,, १०। १२ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** दिनमें ८। ३३ बजेसे रात्रिमें ७। २४ बजेतक, **पूर्णिमा।**
पूर्णिमा रात्रिशेष ६। १५ बजेतक				

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ४।८ बजेतक	बुध	मृगशिरा रात्रिमें ८।४१ बजेतक	१४दिसम्बर	**मिथुनराशि** दिनमें ९। २७ बजेसे।
द्वितीया ,, २।१३ बजेतक	गुरु	आर्द्रा ,, ७।२३ बजेतक	१५ ,,	**धनुसंक्रान्ति** रात्रिशेष ६। ० बजे, खरमासारम्भ।
तृतीया ,, १२।३९ बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु ,, ६।२१ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** दिनमें १। २६ बजेसे रात्रिमें १२। ३९ बजेतक, **कर्कराशि** दिनमें १२। ३७ से।
चतुर्थी ,, ११।२६ बजेतक	शनि	पुष्य सायं ५।४१ बजेतक	१७ ,,	**संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।५२ बजे, **मूल** सायं ५। ४१ बजेसे।
पंचमी ,, १०।३८ बजेतक	रवि	आश्लेषा ,, ५।२४ बजेतक	१८ ,,	**सिंहराशि** सायं ५। २४ बजेसे।
षष्ठी ,, १०।२० बजेतक	सोम	मघा ,, ५।३६ बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०। २० बजेसे, **मूल** सायं ५। ३६ बजेतक।
सप्तमी ,, १०।३३ बजेतक	मंगल	पू० फा० रात्रिमें ६।१८ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** दिनमें १०। २७ बजेतक, **कन्याराशि** रात्रिमें १२। ३६ बजेसे।
अष्टमी ,, ११।१९ बजेतक	बुध	उ० फा० ,, ७।३० बजेतक	२१ ,,	**सायन मकरराशिका सूर्य** रात्रिमें १। ३ बजे।
नवमी ,, १२।३० बजेतक	गुरु	हस्त ,, ९।१० बजेतक	२२ ,,	× × × ×
दशमी ,, २।१० बजेतक	शुक्र	चित्रा ,, ११।१५ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** दिनमें १। २० बजेसे रात्रिमें २। १० बजेतक, **तुलाराशि** दिनमें १०। १३ बजेसे।
एकादशी ,, ४।७ बजेतक	शनि	स्वाती ,, १।३९ बजेतक	२४ ,,	**सफला एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी रात्रिशेष ६।१६ बजेतक	रवि	विशाखा ,, ४।१५ बजेतक	२५ ,,	**वृश्चिकराशि** रात्रिमें ९। ३६ बजेसे।
त्रयोदशी अहोरात्र	सोम	अनुराधा अहोरात्र	२६ ,,	**सोमप्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी दिनमें ८।२५ बजेतक	मंगल	अनुराधा प्रात: ६।५२ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** दिनमें ८। २५ बजेसे रात्रिमें ९। २५ बजेतक, **मूल** प्रात: ६।५२ बजेसे।
चतुर्दशी ,, १०।२४ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा दिनमें ९।१९ बजेतक	२८ ,,	**धनुराशि** दिनमें ९। १९ बजेसे, **श्राद्धकी अमावस्या।**
अमावस्या ,, १२।६ बजेतक	गुरु	मूल ,, ११।२९ बजेतक	२९ ,,	**अमावस्या, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रका** सूर्य प्रात: ६। ५७ बजे, **मूल** दिनमें ११। २९ बजेतक।

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६-२०१७, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १।२१ बजेतक	शुक्र	पू० षा० दिनमें १।१६ बजेतक	३०दिसम्बर	**मकरराशि** रात्रिमें ७। ३६ बजेसे।
द्वितीया ,, २।९ बजेतक	शनि	उ० षा० ,, २।३५ बजेतक	३१ ,,	× × × ×
तृतीया ,, २।२३ बजेतक	रवि	श्रवण ,, ३।२२ बजेतक	१जनवरी	जनवरी २०१७ प्रारम्भ, **भद्रा** रात्रिमें २। १५ बजेसे, **कुंभराशि** रात्रिमें ३। ३२ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ३। ३२ बजे।
चतुर्थी ,, २।७ बजेतक	सोम	धनिष्ठा ,, ३।४१ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** दिनमें २। ७ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, १।२२ बजेतक	मंगल	शतभिषा ,, ३।३० बजेतक	३ ,,	**रवियोग** दिनमें ३। ३० बजेसे।
षष्ठी ,, १२।१२ बजेतक	बुध	पू० भा० ,, २।५४ बजेतक	४ ,,	**मीनराशि** दिनमें ९। ३ बजेसे।
सप्तमी ,, १०।४० बजेतक	गुरु	उ० भा० ,, १।५९ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।४० बजेसे रात्रिमें ९।४३ बजेतक, **मूल** दिनमें १।५९ बजेसे।
अष्टमी ,, ८।४६ बजेतक	शुक्र	रेवती ,, १२।४३ बजेतक	६ ,,	**मेषराशि** दिनमें १२।४३ बजेसे, **पंचक समाप्त** दिनमें १२।४३ बजे।
नवमी रात्रिशेष ६।४० बजेतक				
दशमी रात्रिमें ४।२४ बजेतक	शनि	अश्विनी ,, ११।१५ बजेतक	७ ,,	**मूल** दिनमें ११। १५ बजेतक।
एकादशी ,, २।३ बजेतक	रवि	भरणी ,, ९।३८ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** दिनमें ३। १४ बजेसे रात्रिमें २। ३ बजेतक, **वृषराशि** दिनमें ३। १३ बजेसे, **पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, ११।४२ बजेतक	सोम	कृत्तिका प्रात: ७।५६ बजेतक	९ ,,	× × × ×
त्रयोदशी ,, ९।२६ बजेतक	मंगल	मृगशिरा रात्रिमें ४।४५ बजेतक	१० ,,	**मिथुनराशि** सायं ५। ३२ बजेसे, **भौमप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, ७।२० बजेतक	बुध	आर्द्रा ,, ३। २३ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७। २० बजेसे **रात्रिशेष** ६। २३ बजेतक, **उत्तराषाढ़ाका सूर्य** दिनमें ७। ३४ बजे।
पूर्णिमा सायं ५।२६ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु ,, २।१७ बजेतक	१२ ,,	**कर्कराशि** रात्रिमें ८। ३३ बजेसे, **पूर्णिमा, माघस्नान प्रारम्भ।**

कृपानुभूति

ईश्वरीय कृपा

बात सन् १९४७ ई० की है, जब यह देश अँगरेजोंके चंगुलसे मुक्त हुआ ही था। हम अपनी शैशवावस्थामें थे। हमारे लिये आजादीसे तात्पर्य तिरंगा झण्डा लेकर टोलियोंके साथ-साथ नारे लगाते घूमना एवं आजादीके दीवानोंकी जय-जयकार करनामात्र था। उसी वर्ष घनघोर बरसात हुई। यमुनाके किनारे बसे हुए सभी नगरोंमें जलप्लावनका दृश्य दृष्टिगोचर हो रहा था। उन्हींमेंसे एक शहरकी घटना है, जिसे यादकर आज भी रोंगेटे खड़े हो जाते हैं और सर्वशक्तिमान्‌के अस्तित्वका बोध होता है। उस समय मेरी और मेरे अनुजकी अवस्था क्रमशः मात्र ११ एवं ८ वर्षकी थी। बाढ़का पानी नगरके निचले मोहल्लोंमें प्रवेश कर चुका था। बहुत आवश्यक काम होनेपर ही जलप्लावित सड़कमार्गको एकमात्र किश्तीद्वारा पार किया जाता था; क्योंकि बाढ़के पानीमें तेज बहाव था, अतः भँवर पड़ रही थीं। हमारे विद्यालयसे लेकर लाल किलेतक एक ही नाव थी, जो सवारियाँ ढो रही थी। जहाँ वयस्कोंके मनमें जोखिमका संचार था, वहाँ अल्पवयस्कोंके लिये जलप्लावन और नावकी सैर मनको पुलकायमान करनेवाली थी।

हमारे भी बालमनमें आया कि क्यों न नावकी सैरका लुत्फ उठाया जाय। उन दिनों पिताश्रीसे दैनिक जेबखर्चके लिये इकन्नी मिलती थी। हम दोनों भाइयोंने अपनी-अपनी इकन्नी सहेजकर रख छोड़ी थी और अपनी लालसाको मूर्तरूप देनेके लिये व्यग्र हो रहे थे। अतः स्कूलकी छुट्टी होते ही दोनों भाई अपने-अपने बस्ते अपने पड़ोसी सहपाठियोंके हवालेकर नावपर सवार हो गये और जेबमें पड़ी दोनों इकन्नियाँ मल्लाहको भेंट कर दीं। भेंट करते समय खयाल नहीं रहा कि वापसीके लिये भी दो इकन्नियोंकी दरकार होगी। आह्लादकारी स्वप्नोंकी तन्द्रा तब टूटी, जब मल्लाहने वापसीके लिये सवारियाँ भरना शुरू कर दिया और दोनों भाइयोंको अपनी नौकासे बेदखल कर दिया। नाव सवारियोंसे लदकर रवाना होने लगी और दोनों भाई नावके कंगूरे पकड़े-पकड़े पानीमें घिसटने लगे। अब नाव लाल किलेके किनारे-किनारे उस मुकामपर पहुँच चुकी थी, जहाँ जलस्तर १० वर्षके बालकको डुबानेके लिये काफी था। पानी हमारे सीनेतक था और अग्रजके सहारा देनेपर भी अनुज पानीमें हिचकोले लेने लगा था। मल्लाहसे काफी अनुनय-विनय की, परंतु वह टस-से-मस न हुआ और मौतके पलड़ेमें झूलते बालककी तुलनामें उसके लिये नावका किराया ज्यादा वजनदार था। नावमें सवार चालीस सवारियोंमेंसे किसी भी बन्देका दिल न पसीजा कि मात्र एक आनेसे हलका हो जाय और डूबते बच्चोंको बचा ले। मल्लाह इतना निर्दयी निकला कि नावको पकड़े मेरे एक हाथको भी झटककर अलग कर दिया। तिनके-सा सहारा भी हाथसे जाता रहा। अब हम भ्राताद्वय नितान्त बेसहारा हो चुके थे। कहते हैं कि विपदाके समय सबसे बड़ा सम्बल परमात्माका होता है। माताश्रीसे गज और ग्राहकी पौराणिक कथा सुनी हुई थी। तभी आस्थाने जाग्रत् होकर परमात्माको चुनौती दी कि यदि यह कथा सच्ची है तो इस घड़ी वैसा ही चमत्कार क्यों नहीं होता और भाइयोंका बिछोह क्यों कर रहा है? आत्मप्रवंचनासे संतप्त यह विचार मनको उद्वेलित कर ही रहा था कि एक बिलकुल खाली नाव जिसे कोई किशोर चला रहा था, जिससे मैं कतई अपरिचित था, पहले मेरा नाम लेकर सम्बोधन किया फिर गर्दनतक डूब चुके अनुजको अपनी नावपर खींच लिया। मैं अभी भी अर्धचेतनावस्थामें था। मैं कब और कैसे नावपर बैठा और कैसे जलप्लावित मार्गको पारकर स्कूलतक वापस पहुँचा, मुझे स्वप्नवत् लगा। नावसे उतरनेके उपरान्त किशोरके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेके लिये मैंने गर्दन सीधीकर देखा तो कहीं कुछ नहीं था। पहलीवाली नाव अभी भी दूरीपर थी और देखते-ही-देखते मय सभी सवारियोंके भँवरमें फँस चुकी थी। मल्लाहने लाख कोशिश की, मगर चकरघिन्नी हुई नाव स्थिर न हो सकी और उलट गयी। कुछ सवारियाँ बह गयीं और कुछ गोताखोरोंद्वारा बचा ली गयीं। भ्राताद्वयने स्कूलके चौकीदारके कमरेमें जाकर अपने-अपने कपड़े सूखनेतक इन्तजार किया और ईश्वरके चमत्कारका साक्षात्कारकर दोनों भाई घर पहुँचे। सहपाठियोंने एक नेक काम किया था कि घरवालोंको यथार्थसे परिचित नहीं कराया वरना बुजुर्गोंकी मारकी त्रासदी अलगसे भोगनी पड़ती।—**उमाशंकर अग्रवाल**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

पापकी कमाईसे पाप ही पनपता है

हमारा पैतृक घर उत्तर प्रदेशके जनपद मैनपुरीके मुहल्ला मोखमगंजमें स्थित था। चूँकि हमारे इस घरमें पहले कभी एक छापाखाना था, इसलिये पूरे मोहल्लेका नाम ही 'छुपट्टी' पड़ गया था। हमारे दादाके परदादा मुंशी कन्हैयालालजीने यह घर खरीदा था, इसलिये लोग इसे 'कन्हैया-कुटीर' के नामसे जानते थे। हमारे घरके ही सामनेके मकानमें, सड़कके किनारे-किनारे चार-पाँच छोटे-छोटे कमरे थे, जिन्हें कोठरियाँ कहते थे। इन कोठरियोंमें कुछ लोग, जिनके परिवार नहीं थे, किरायेपर रहते थे। खुद खाना बनाते थे, खाते थे और अपनी जिन्दगी बसर करते थे। हमारे घरके ठीक सामनेवाली कोठरीमें एक अधेड़ व्यक्ति आकर रहने लगा था। उसने अपना नाम दुर्गाप्रसाद बताया था, लेकिन लोग उसे 'दुर्गू' कहते थे।

दुर्गूका अपना कोई नहीं था। कमानेके नामपर तो वह कुछ भी नहीं करता था। कभी कभार-बाल-बच्चोंके लिये 'बुढ़ियाके बाल', सीटियाँ तथा छोटे-छोटे खिलौने लाकर बेचा करता था। शेष समय आरामसे पड़ा सोता रहता था। अपनेको बड़ा गरीब इंसान बताता था। इसलिये मोहल्लेवाले इसे तीज-त्यौहारोंपर खाना खिला देते थे और दयावश कभी-कभी इनाम-इकराम एवं बख्शीश भी दे दिया करते थे।

जिस तरहसे कोई ला-इलाज बीमार व्यक्ति अपनी जिन्दगीके दिन काटता है, 'दूर्गू' भी अपना जीवन इसी प्रकार काट रहा था। उसकी कोई इच्छा नहीं थी। न उसे किसीने कभी पूजा-पाठ करते देखा था। न कभी सैर-सपाटा करते देखा था, न उसको किसीने मनोरंजन करते देखा था। उसका जीवन बुझे-बुझेसे दीपकके समान था। कभी-कभी चिलम पी लेता था और खाँसता रहता था।

उसके जीवनमें कोई उतार-चढ़ाव नहीं था। सीधी सपाट जिन्दगी थी उसकी। उसके अन्दर कोई आकांक्षा महत्त्वाकांक्षा भी नहीं थी। शहरमें दशहराका मेला लगता था तो वह उसमें भी कभी नहीं जाता था। जेलमें जैसे कोई कैदी रहता है, अपना जीवन काटता है, वैसे ही वह अपना जीवन काट रहा था। कभी भी किसी खोमचेवालेसे पैसे-दो-पैसेकी चीज नहीं खरीदकर खाता था। बुझे-बुझे दीपक-जैसी उसकी जिन्दगी चल रही थी। आश्चर्य तो इस बातका था कि वह कभी बीमार भी नहीं पड़ता था। लोग उसपर तरस खाकर कभी-कभी खानेके लिये खाना परोसकर दे जाया करते थे।

× × ×

एक दिन दुर्गू सबेरेसे उठा नहीं तो उठा ही नहीं। उससे उठातक नहीं गया। दिन-पर-दिन उसका जर्जर शरीर और जर्जर होता चला गया। अब तो उसने चिलम पीना भी छोड़ दिया था। संसारमें उसका कोई नहीं था—न वह किसीसे कोई बात ही करता था। अपनेको छिपाये-छिपाये रखता था। मानो कोई अवधूत हो। जैसे कोई गुप्त-साधना करनेवाला कोई तान्त्रिक अघोरी हो।

उसके चेहरेपर न कोई होलीपर अबीर-गुलाल लगाता था, न दीपावलीपर कोई उसकी कोठरीमें दो दीपक ही जलाकर रखता था। अकेला चारपाईपर पड़ा रहता था। ऐसा लगता था, मानो वह किसी संगीन जुल्ममें पकड़े जानेके डरसे भेष बदलकर कोई भागा हुआ मुजरिम हो। गुनहगार हो, जो अपनी शेष जिन्दगी किसी तरह अँधेरेमें बिता रहा हो। किसीको क्या पड़ी है जो कोई उसमें दिलचस्पी ले। सभी उससे दूर-दूर ही रहते थे।

× × ×

एक दिन उससे उठा नहीं गया। टूटी-फूटी-सी चारपाईपर पड़े-पड़े ही उसने अपना दम तोड़ दिया। मोहल्लेके कुछ जागरूक सज्जनोंने उसके लिये अर्थी

बनायी और उसे चन्दा एकत्रित करके शमशान ले जाकर फूँक आये।

उसके मरनेके बाद जब उसके घरकी चीजें देखी गयीं तो लोगोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। जमीनके गड्ढेमें लोहेकी एक सन्दूकचीमें कुछ अशर्फियाँ, कुछ गहने, कुछ चाँदीके सिक्के, चाँदीके रुपये और कुछ बेश कीमती जेवरात मिले, जो काफी पुराने किस्मके मालूम होते थे।

दुर्गूकी इस कीमती धरोहरपर लोग आश्चर्य कर रहे थे और कह रहे थे कि इसके पास इतना धन था तो भी इसने इसका उपयोग अपने लिये क्यों नहीं किया? खैर, कुछ धनी-मानी सुनारोंको बुलवाकर उसके धनका हिसाब-किताब लगाया गया। सुनारोंने उसके सारे धनका मोल पूरे ५० करोड़ रुपयोंका लगाया और खरीदनेके लिये भी तैयार हो गये।

× × ×

मेरे परबाबा (मुन्शी महावीर प्रसाद पेशकार) उन दिनों श्रीचित्रगुप्त इण्टर कॉलेज तथा श्रीचित्रगुप्त डिग्री कॉलेजकी कार्यकारिणी समितिके मनोनीत प्रबन्धक तथा अध्यक्ष थे। स्कूल और कॉलेजकी सम्मिलित मीटिंग आयोजित की गयी, जिसमें यह निर्णय लिया गया कि इस धनका क्या सदुपयोग किया जाय? कई दिनोंके वाद-विवादके बाद सर्वसम्मत्तिसे यह निर्णय लिया गया कि मैनपुरी जनपदमें गर्मी बहुत पड़ती है और छात्र-छात्राओंके लिये क्लास-रूममें 'सीलिंग-फैन' नहीं हैं; अतः इस धनसे सबसे पहले हर क्लास-रूममें एक-एक बड़े साइजका 'सीलिंग-फैन' जो अच्छी क्वालिटीका हो, लगवा दिया जाय। निर्णयका पालन अविलम्ब हुआ। पर यह क्या? पंखोंकी क्वालिटी भी उत्तमोत्तम थी और पंखे टाँगनेवाले भी सिद्धहस्त थे, सुपर टेक्नीशियन थे, पर पंखे जैसे ही चले, वैसे ही उनकी पंखुड़ियाँ उखड़-उखड़कर, इधर-उधर, तीव्रगतिसे गिरने लगीं। सबके सब हतप्रभ रह गये। कई छात्र-छात्राओंको चोटें भी लगीं। निदान; पंखे उतरवाकर स्टोर-रूममें रखवा दिये गये।

अब कार्यकारिणीकी मीटिंग यह जाननेके लिये निश्चित की गयी कि आखिर ऐसी दुर्घटना हुई क्यों? पंखे बनानेवाली कम्पनीके कारीगर बुलाये गये। पंखे टाँगनेवाले टेक्नीशियन बुलवाये गये। सबकी जाँच-पड़ताल हुई। नतीजा यह निकला कि पंखे तो ठीक हैं, टेक्नीशियन भी ठीक हैं, पर पंखोंकी खरीदारीपर जो धन खर्च हुआ है, वह कहाँसे आया? इस तथ्यको जाननेके लिये, यह मामला पुलिसको सौंप दिया गया।

पुलिसकी इन्क्वायरी पूरे दो वर्ष चली, तब कहीं जाकर बीस वर्ष पहलेका पुलिस-रिकार्ड मँगवाया गया। उससे यह पता चला कि बीस-पच्चीस वर्षपूर्व दुर्गाप्रसाद नामका एक कुख्यात डाकू गायब हो गया था। हाथ-पैरकी उँगलियोंके निशानोंसे पता चला कि 'दुर्गू' नामका यह व्यक्ति, जो अब वृद्ध हो गया था, बीस-पच्चीस वर्षपूर्व दुर्गाप्रसाद नामका डाकू था, जिसने यह सारी रकम सरकारसे छिपाकर अपने कमरेकी जमीन खोदकर उसमें एक पीतलकी बड़ी गंगालमें छिपाकर, उसपर पत्थरका ढँकना लगाकर जमीनमें गाड़ रखी थी। यह धन उसी गंगालमेंसे निकला था, जो गलत ढंगसे लूटा गया था।

जब यह समाचार समाचार पत्रोंमें छपा तब लोगोंने कहा कि पापकी कमाईसे पाप ही पनपता है, अतः जिलाधिकारीके एक आदेशके अनुसार यह सारा धन सरकारी खजानेमें जमा कर दिया गया।

बादमें, स्कूल-कॉलेजोंके कमरोंमें सीलिंग-फैन फिरसे लगवाये गये, जो अबतक ठीक-ठाक चल रहे हैं। लोगोंका यह सोचना गलत नहीं था कि दुर्गू नामवाला यह आदमी कुख्यात डाकू दुर्गाप्रसाद ही था, पापसे लूटा गया जिसका सारा धन आखिर पाप करके ही शान्त हुआ। भगवान् बुद्धने यूँ ही तो नहीं कहा था कि शुद्ध आजीविका ही फलीभूत होती है। जो प्राणीकी

आत्माका उद्धार करती है। लोग सच ही कहते हैं कि पापकी कमाईसे पाप ही पनपता है।

—रसिक बिहारी मंजुल

(२)

पुनर्नवाके अनुभूत प्रयोग

❀ पुनर्नवा पीलिया रोगकी अत्यन्त प्रभावकारी औषधि है। पीलियामें पुनर्नवाके १० से २० ग्राम पंचांगके रसमें २ से ४ ग्राम हरड़का चूर्ण मिलाकर सेवन कराना चाहिये।

❀ लाल पुनर्नवाकी जड़ पीसकर पीनेसे पीलियासे मुक्ति मिल जाती है।

❀ गुर्देकी बीमारीमें पुनर्नवा पंचांगके १० से २० ग्राम चूर्णका क्वाथ नियमित लेनेसे वृक्क सम्बन्धी रोगोंसे मुक्ति मिलती है।

❀ मुँहके छाले (निनांवां)–में पुनर्नवाकी जड़को गायके दूधमें पीसकर छालेपर लेप करनेसे मुखके छालेसे छुटकारा मिल जाता है।

❀ हृदय रोगमें पुनर्नवाकी पत्तियोंके सागके सेवनसे लाभ होता है।

❀ पुनर्नवाकी जड़के चूर्णमें शक्कर मिलाकर दिनमें दो बार लेनेसे शुष्क कॉससे छुटकारा मिलता है।

❀ पुनर्नवा मूलके तीन ग्राम चूर्णमें ५०० मि०ली० ग्राम हल्दीका चूर्ण मिलाकर प्रात:–सायं खिलानेसे दमासे मुक्ति मिलती है।

❀ पुनर्नवा पत्रका १०० ग्राम स्वरस, २०० ग्राम मिश्री चूर्ण, १२ ग्राम पिप्पली चूर्ण इन तीनोंको मिलाकर पकायें। जब चाशनी गाढ़ी हो जाय तो उसे बन्द बोतलमें भर लें। इस शरबतकी ४ से १० बूँद बच्चोंको दिनमें तीन बार चटानेसे बच्चोंकी खाँसी, श्वासरोग, अधिक लारका बहना, जिगर बढ़ना और जिगरकी अन्य खराबी एवं शीतके प्रभावसे मुक्ति मिलती है।

❀ पुनर्नवा मूलके चूर्णको चायके एक चम्मचकी मात्राके बराबर दो बार सेवन करनेसे मृदु विरेचन होता है।

❀ देशी गायके गोमूत्रके साथ पुनर्नवा मूलके नियमित सेवनसे शोथ और उदर रोगोंसे मुक्ति मिल जाती है।

❀ पुनर्नवाकी पाँच–सात संख्यामें ली गयी पत्तियोंके साथ दो या तीनकी संख्यामें गोलमिर्चको पीसकर पिलानेसे मूत्रकृच्छ्से छुटकारा मिलता है।

❀ पुनर्नवाकी पत्तियोंके ५ से १० मि०ली० स्वरसको दूधमें मिलाकर पिलानेसे मूत्रकी रुकावट मिट जाती है।

❀ पुनर्नवा पंचांग या केवल मूलके सूखे चूर्णकी तीन ग्राम मात्रा गरम पानीके साथ प्रयोगसे शोथ, मूत्रकृच्छ तथा हृदय विकारमें राहत मिलती है।

❀ पुनर्नवाके पंचांग या केवल जड़के चूर्णको दूधके साथ लेनेसे शरीर पुष्ट होता है।

❀ सफेद पुनर्नवाकी १०–२० ग्राम जड़को तंडुलोदकके साथ पीसकर देनेसे प्लीहावृद्धि नियन्त्रित हो जाती है।

❀ पुनर्नवाके क्वाथके साथ कपूर और सोंठकी एक ग्राम मात्राके साथ सात दिनके सेवनपर आम वातसे मुक्ति मिल जाती है।

❀ सफेद पुनर्नवाकी जड़को तेलमें पकानेके बाद उस तेलसे पैरकी मालिश करनेपर वात संकटसे मुक्ति मिल जाती है।

❀ चातुर्थिक ज्वरमें सफेद पुनर्नवाकी जड़की दो ग्राम मात्रा दूध या पानके पत्तेके रसमें सुबह–शाम सेवनसे लाभ मिलता है।

❀ मूत्रमार्गमें संक्रमणसे पेशाबमें होनेवाली जलन और ज्वरसे छुटकारेमें पुनर्नवाका क्वाथ या चूर्ण अत्यन्त प्रभावकारी है।

❀ पुनर्नवाके जड़का २ ग्राम चूर्ण दूधके साथ नियमित छ: मासतक सेवन करनेपर आयु बढ़ती है तथा वृद्धावस्था तरुणाईमें बदल जाती है।

❀ पुनर्नवा पुष्पको सुखाकर बने चूर्णकी एक ग्राम मात्रा तीन ग्राम मिश्री मिलाकर खानेके बाद ऊपरसे दूध पीनेसे बलवृद्धि होती है और प्रमेहसे छुटकारा मिलता है।—डॉ० दिलीप कुमार

मनन करने योग्य

न्याय और धर्म

काश्मीरके हिन्दू-नरेश अपनी उदारता, विद्वत्ता और न्यायप्रियताके लिये बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। उनमेंसे महाराज चन्द्रापीड उस समय गद्दीपर थे। उन्होंने एक देवमन्दिर बनवानेका संकल्प किया। शिल्पियोंको आमन्त्रण दिया गया और राज्यके अधिकारियोंको शिल्पियोंके आदेशोंको पूरा करनेकी आज्ञा हो गयी।

शिल्पियोंने एक भूमि मन्दिर बनानेके लिये चुनी, परंतु उस भूमिको जब वे मापने लगे, तब उन्हें एक व्यक्तिने रोक दिया। भूमिके एक भागमें उस व्यक्तिकी झोपड़ी थी। उस झोपड़ीको छोड़ देनेपर मन्दिर ठीक बनता नहीं था। राज्यके मन्त्रीगण उस व्यक्तिको बहुत अधिक मूल्य देकर वह भूमि खरीदना चाहते थे; किंतु वह किसी भी मूल्यपर अपनी झोपड़ी बेचनेको उद्यत नहीं था। बात महाराजके पास पहुँची। उन न्यायप्रिय धर्मात्मा राजाने कहा—'बलपूर्वक तो किसीकी भूमि छीनी नहीं जा सकती। मन्दिर दूसरे स्थानपर बनाया जाय।'

शिल्पियोंके प्रधानने निवेदन किया—'पहली बात तो यह कि उस स्थानपर मन्दिर बननेका संकल्प हो चुका, दूसरे आराध्यका मन्दिर सबसे उत्तम स्थानपर होना चाहिये और उससे अधिक उपयुक्त स्थान हमें दूसरा कोई दीखता नहीं।'

महाराजकी आज्ञासे वह व्यक्ति बुलाया गया। नरेशने उससे कहा—'तुम जो मूल्य चाहो, तुम्हारी झोपड़ीका दिया जायगा। दूसरी भूमि तुम जितनी कहोगे, तुम्हें मिलेगी और यदि तुम स्वीकार करो तो उसमें तुम्हारे लिये भवन भी बनवा दिया जाय। धर्मके काममें विघ्न क्यों डालते हो? देवमन्दिरके निर्माणमें बाधा डालना पाप है, यह तो तुम जानते ही होगे।'

उसने नम्रतापूर्वक कहा—'महाराज! यह झोपड़ी या भूमिका प्रश्न नहीं है। वह झोपड़ी मेरे पिता, पितामह आदि कुलपुरुषोंकी निवासभूमि है। मेरे लिये वह भूमि माताके समान है। जैसे किसी मूल्यपर, किसी प्रकार आप अपना पैतृक राजसदन किसीको नहीं दे सकते, वैसे ही मैं अपनी झोपड़ी नहीं बेच सकता।'

नरेश उदास हो गये। वह व्यक्ति दो क्षण चुप रहा और फिर बोला—'परंतु आपने मुझे धर्मसंकटमें डाल दिया है। देवमन्दिरके निर्माणमें बाधा डालनेका पाप मैं करूँ तो वह पाप मुझे और मेरे पूर्वजोंको भी ले डूबेगा। आप धर्मात्मा हैं, उदार हैं और मैं हीन जातिका कंगाल मनुष्य हूँ, किंतु यदि आप मेरे यहाँ पधारें और मुझसे मन्दिर बनानेके लिये झोपड़ी माँगें तो मैं वह भूमि आपको दान कर दूँगा। इससे मुझे और मेरे पूर्वजोंको भी पुण्य ही होगा।'

'महाराज इस हीन जातिके व्यक्तिसे भूमिदान लेंगे?' राजसभाके सभासदोंमें रोषके भाव आये। वे परस्पर काना-फूसी करने लगे।

'अच्छा, तुम जाओ!' महाराजने उस व्यक्तिको उस समय बिना कुछ कहे विदा कर दिया; परंतु दूसरे दिन काश्मीरके वे धर्मात्मा अधीश्वर उसकी झोपड़ीपर पहुँचे और उन्होंने उससे भूमिदान ग्रहण किया।
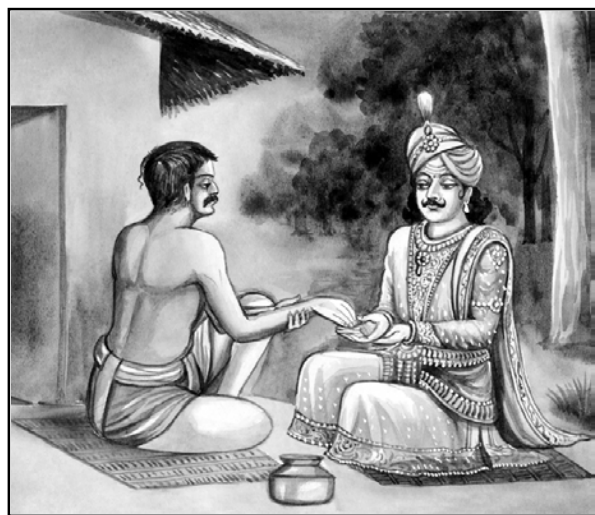
[राजतरङ्गिणी]

श्रीगीता-जयन्ती

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः। सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥ (गीता ६। ३०-३१)

'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।'

आजके इस अत्यन्त संकीर्ण स्वार्थपूर्ण जगत्‌में दूसरेके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख समझनेकी शिक्षा देनेके साथ-साथ कर्तव्य-कर्मपर आरूढ़ करानेवाला और कहीं भी आसक्ति-ममता न रखकर केवल भगवत्सेवाके लिये ही यज्ञमय जीवन-यापन करनेकी सत्-शिक्षा देनेवाला सार्वभौम ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता' ही है। इस ग्रन्थका विश्वमें जितना अधिक वास्तविक रूपमें प्रचार-प्रसार होगा, उतना ही मानव सच्चे सुख-शान्तिकी ओर बढ़ सकेगा।

मार्गशीर्ष शुक्ल ११ (एकादशी), शनिवार, दिनाङ्क १० दिसम्बर २०१६ ई० को श्रीगीता-जयन्तीका महापर्व दिवस है। इस पर्वपर जनतामें गीता-प्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये। आजके किंकर्तव्यविमूढ़ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य होने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थ-पूजन। (२) गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासदेवका पूजन। (३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण। (४) गीता-तत्त्वको समझने-समझानेके हेतु गीता-प्रचारार्थ एवं समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्य-परायण बनानेकी महती शिक्षाके लिये इस परम पुण्य दिवसका स्मृति-महोत्सव मनाना तथा उसके संदर्भमें सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन एवं भगवन्नाम-संकीर्तन आदि करना-कराना। (५) महाविद्यालयों और विद्यालयोंमें गीता-पाठ, गीतापर व्याख्यान, गीता-परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र-छात्राओंको पुरस्कार-वितरण आदि। (६) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीता-कथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्‌का विशेषरूपसे पूजन और आरती करना। (७) जहाँ किसी प्रकारकी अड़चन न हो, वहाँ श्रीगीताजीकी शोभायात्रा (जुलूस) निकालना। (८) सम्मान्य लेखक और कवि महोदयोंद्वारा गीता-सम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीता-प्रचार करने और करानेका संकल्प लेना, तदर्थ प्रेरणा देना और (९) देश, काल तथा पात्र (परिस्थिति)-के अनुसार गीता-सम्बन्धी अन्य कार्यक्रम अनुष्ठित होने चाहिये।

—सम्पादक

ग्राहकोंसे आवश्यक निवेदन

जनवरी २०१७ का विशेषाङ्क '**श्रीशिवमहापुराणाङ्क**'-हिन्दी भाषानुवाद, श्लोकाङ्कसहित-प्रथम भाग, दिसम्बर २०१६ से ही भेजनेका प्रयास है। **रजिस्ट्रीसे विशेषाङ्क प्राप्त करनेके लिये सदस्यता-शुल्क यथाशीघ्र भेजें।**

गीताप्रेसकी दूकानोंपर भी सदस्यता-शुल्क छपी रसीद प्राप्त करके जमा कर सकते हैं। जिन ग्राहकोंका सदस्यता-शुल्क नवम्बरके अन्ततक प्राप्त नहीं होगा उन्हें बादमें वी०पी०पी०से विशेषाङ्क भेजा जायगा।

जनवरी सन् 2017 से 'कल्याण'-विशेषांक अजिल्द उपलब्ध नहीं होगा।

वार्षिक-शुल्क—₹ २२० (सजिल्द)। पंचवर्षीय-शुल्क—₹ ११०० (सजिल्द)।

इंटरनेटसे सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

व्यवस्थापक—'**कल्याण-कार्यालय' पो०-गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

प्र० ति० २०-१०-२०१६
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014–2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014–2016